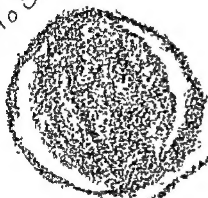
हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो में वर्ग-संघर्ष

 सूर्य प्रकाशन मन्दिर

डा० ओमवती सक्सेना



हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्गसंघर्ष

ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष

ऐतिहासिक उपन्यासो की सृजनात्मक प्रेरणा

ऐतिहासिक हिन्दी साहित्य के निर्माण की मूल प्रेरणाओ का विश्लेषण करते हुए एक आलोचक ने लिखा है कि कथाकार इन सात भावनाओ से प्रेरित होकर ही इतिहास की ओर प्रवृत्त हुए—'वर्तमान से पराजित अथवा असतुष्ट होने के फलस्वरूप पलायन की भावना, अतीत को वर्तमान से अधिक श्रेष्ठ एव महत्वपूर्ण समझते हुए उसके पुनस्सस्थापन की भावना, वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीव्य खोजने की भावना, कतिपय ऐतिहासिक घटनाओ या पात्रो के प्रति न्याय की भावना, इतिहास-रस म लिप्त रहने की सहज भावना, जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापना तथा वीर पूजा-भावना, जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करन की भावना।'[1] इन भावनाओ से किसी एक अथवा एकाधिक से सयुक्त होकर उपन्यासकारों ने अपनी कृतियो का सृजन किया है। आलोचको ने ऐतिहासिक रचनाओं के समष्टिपरक अनुशीलन के आधार पर सात मूल सृजन प्रेरणाओ का उल्लेख किया है—'वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यास कला आत्माभिमान, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापन तथा वीर पूजा की भावना से प्रेरित है, आचार्य चतुरसेन की ऐतिहासिक रचनाए इतिहास-रस म लिप्त रहने के कारण नैसर्गिक भावना और वर्तमान को शक्तिशाली बनान के लिए अतीत से उपजीव्य खोजने की भावना से प्रभावित हैं, राहुल साकृत्यायन तथा यशपाल के उपन्यास जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने के कतिपय ऐतिहासिक पात्रो अथवा घटनाओ के प्रति न्याय की भावना से अनुप्राणित हैं।"[2] "ऐतिहासिक उपन्यासो की सीधी परम्परा रोमान्सों से जुडी रहती है। वह विकसित रूप जिसे हम आज के ऐतिहासिक उपन्यासो में पाते हैं, मुख्यत अठारहवी तथा उन्नीसवी सदी की देन है।"[3]

---

१ आलोचना (उपन्यास अक)—१३, पृ० १७८
२ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३३२
३ हिन्दी उपन्यास कला—डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ० ६७

ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्ग भावना का स्वरूप

हिन्दी के कथाकारों में राहुल सांकृत्यायन ने भारत के प्राचीन इतिहास और मार्क्सवादी दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया तथा अपने उपन्यासों में दोनों का समन्वय किया। उनके उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समाजवादी आलोक का प्रसार करते हैं। सिंह सेनापति में वैशाली के गणराज्य तथा मगध साम्राज्य के संघर्ष की कहानी है। यशपाल मार्क्सवादी लेखक हैं और द्वितीय महायुद्ध के सम्बन्ध में जो मार्क्सवादी धारणाएं थी उनका किसी न किसी रूप में प्रस्फुटन इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में हुआ है।[1] मुर्दों का टीला उपन्यास में—लेखक ने उस युग की सभ्यता के धनिकों के हास विलास व अत्याचार ग्रस्त दास वर्ग के जीवन का निरूपण करते हुए अन्त में सम्पूर्ण सभ्यता के जल मग्न हो जाने की कथा कही है।[2] दिव्या उपन्यास में सामन्ती शोषण की प्रतिक्रियाएं अभिव्यक्त की है। शोषित नारी का शोषण करने वाले व्यक्तियों, समुदायों और संस्थाओं का भी कुरूप चेहरा उभरता है। गरीब ब्राह्मण जो स्वयं गरीब है शोषित है अपनी सेविका का शोषण करने में नहीं चूकता। दास प्रथा सामन्त प्रथा में शोषण तमाम छोटी बड़ी सीढ़ियां हैं जो क्रमशः एक दूसरे पर सवार हैं।[3] दास प्रथा तथा सामन्ती प्रथा के साथ साथ राजाओं और नवाबों की विलासी भावना ने नारी जीवन का निरन्तर शोषण किया है। वे स्वयं भी अंग्रेजों से निरन्तर शोषित होते रहे हैं। सोना और खून में नसीरुद्दीन हैदर ने दो करोड़ रुपए खर्च करके जो अंग्रेजों से हिज मजेस्टी की उपाधि खरीदी थी उसका भली भांति उपयोग करने के लिए वे सिर से पैर तक अंग्रेजी लिबास में रहते थे।[4] हिज मजेस्टी नसीरुद्दीन हैदर के महल में बहुत सी बेगमात और ग्यारह सौ आसामियां जलसेवालियां और डोलवालियां थी। नसीरुद्दीन औरतों का खास शौकीन था। उसके महल में अनेक नीच जाति की स्त्रियां भी थीं जिन्हें उसने उपपत्नी या रखैल बनाकर रखा हुआ था।

जय यौधेय में सर्वहारा वर्ग की भावनाओं का निरूपण हुआ है। वहां नारी का शोषण वर्जित माना गया है। रोमक राजाओं के अन्तःपुर तो होता है किन्तु—वहां राजा की एक ही रानी होती है। राजा एक से अधिक विवाह नहीं कर सकता। राजान्तःपुर की परिचायक परिचारिकाएं क्रीतदास नहीं

---

१ हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल पृ० ४०४
२ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी पृ० १६०
३ हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा—डा० रामदरश मिश्र पृ० १७२
४ सोना और खून—आचार्य चतुरसेन पृ० १७२
५ वही पृ० १३

अक्रीतदास है ।"[1] अत जय यौधेय' म वर्णित सभी पात्र सर्वहारा-वर्ग के प्रतीक हैं तथा साम्यवादी विचारधारा के सवाहक । विस्मृत यात्री' म भी इसी भावना का प्रचार प्रसार हुआ है—'दुख को जड से नष्ट करने का केवल एक उपाय है और वह है पुरुष पुरुष म धन-सम्पत्ति की विषमता न रह जाये । न कोई भूखा रहे न कोई धन वैभव म डूबा ।"[2] राहुल जी दुखवाद और मार्क्सवाद से निष्पन्न भावना म सामजस्य स्थापित करत है । राहुल जी न उम आर्थिक विधान तथा सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया है जो आधुनिक पूजीवादी समाज के रूढ़िग्रस्त जीवन की तुलना म अधिक उन्मुख तथा स्वच्छन्द था, जो साम्यवादी सिद्धान्तो के अनुरूप था । यौधेय गण का जीवन सामूहिक चेतना से अनुप्राणित था ।"[3] 'प्रभावती' उपन्यास म भी आधुनिक विचारधारा की छाप स्पष्ट दिखाई देती है । "मनवागढ से लौटकर तथा कान्यकुब्जेश्वर जात हुए खजाने को लूटने के पश्चात् एक दिन प्रभा पेड की छाया म बैठी हुई जो कुछ सोच रही है ।"[4] वह आज ही की विचारधारा है । 'विराटा की पद्मिनी' तथा वृन्दावनलाल वर्मा के अन्य सभी उपन्यास युद्ध से भरपूर है । धन क शोषण व धन लिप्सा के कारण युद्ध व सघर्ष एक स्वाभाविक गति है । "युद्धो की तैयारी, वीर सैनिको का उत्साह, युद्ध स्थलो का बडी सूक्ष्मता से वर्णन मिलता है ।"[5]

ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्गों की स्थिति

श्री वृन्दावनलाल वर्मा सामान्यत अपने उपन्यासो में सामन्त-वर्ग और जन-साधारण का चित्रण करते है । इसलिए उन्ह दो या इससे अधिक पात्रों को लेकर अलग अलग अपना केन्द्र बिन्दु बनाना पडता है । वर्गों की स्थिति साधारण वर्ग, व्यापारी वर्ग राजा वर्ग, ठाकुर वर्ग दास दासी वर्ग, नारी वर्ग आदि अनेक वर्गों मे विभाजित है । मूल रूप मे हम ऐतिहासिक उपन्यासों म दो प्रकार के वर्ग पाते हैं—शोषक वर्ग और शोषित वर्ग । शोषक वर्ग के पात्र कुछ तो सामन्तीय व्यवस्था से सम्बन्ध रखते है और कुछ पूजीवादी व्यवस्था से । शोषित-वर्ग के अधिकतम पात्र अपने शोषण के प्रति सजग हैं तथा वर्ग सघर्ष के लिए आतुर पाये जाते हैं । आचार्य चतुरसेन के ऐतिहासिक उपन्यासो में कथानक बौद्धकाल, मध्यकाल, मुगल काल, अंग्रेजी शासनकाल तथा आधुनिक काल से चुने गये हैं । इन उपन्यासो म वर्गों की स्थिति भी कालानुसार है । प्रत्येक काल

१ जय यौधेय—राहुल साङ्कृत्यायन ६१-६२
२ विस्मृत यात्री—राहुल साङ्कृत्यायन, पृ० ३७०
३ हिंदी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३६८
४ प्रभावती—निराला, पृ० १३४
५ हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास—डा० कमल जौहरी, पृ० २८१

में शोषण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही है तथा वर्गों में संघर्ष भी सदैव व्याप्त रहा है। 'वैशाली की नगरवधू' में कोशल-नरेश महाराजा प्रसेनजित का विरोध उनका पुत्र विद्डभ करता है। इसका कारण वर्ग स्थितियुक्त संघर्ष है—"वृद्धावस्था में भी महाराजा प्रसेनजित लोलुप, कामी एवं विलासी हैं। उनके पुत्र विद्डभ का सर्वाधिक क्रोध इसी बात का है कि महाराज ने अपनी वासना-पूर्ति के लिए उसे दासी से क्यों उत्पन्न किया। उसे इसी कारण पग पग पर अपमानित होना पड़ता है। अन्तत वह अपने विलासी पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र प्रारम्भ कर देता है।"[1] वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में "सामन्तों के पारस्परिक कलह और मुस्लिम प्रतिरोध साथ चलते हैं।[2] प्राय सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में एक वर्ग गढ़पतियों का है जो शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तथा दूसरा वर्ग सेवकों का है। विराटा की पद्मिनी में कुंजर दासी-पुत्र—'चारों ओर से प्रताड़ित होते हुए भी अकेले सभी विघ्नों से संघर्ष करने को प्रस्तुत रहता है।'[3] राहुल सांकृत्यायन के सभी ऐतिहासिक उपन्यास साम्यवादी आदर्श जीवन के प्रतिबिम्ब हैं। पूंजी के सम वितरण द्वारा वर्गों की समान स्थिति का प्रयास किया गया है।

नारी तथा पुरुष के समान अधिकार तथा राजतन्त्र का सर्वथा उन्मूलन कर गणतन्त्रात्मक सहकारी जीवन की व्यवस्था की दृष्टि रखते हुए वर्गों की सम स्थिति का विवेचन किया है। झांसी की रानी में सर्वहारा वर्ग का समर्थन करते हुए लक्ष्मीबाई कोरे आदर्श में विश्वास न करते हुए कर्म तथा निस्स्वार्थ कर्म पर आस्था रखने की प्रेरणा प्रदान करती है तथा सामूहिक शक्ति का समर्थन करती है—'राजा टीमटाम तथा विलासिता का दासत्व छोड़कर प्रजा का सेवक बन जाए तब जाकर स्वराज्य की नींव भर गई तथा भवन बनना प्रारम्भ हो गया।'[4] नारी वर्ग की स्थिति अभी तक शोषित ही बनी रही है। इस वर्ग की स्थिति का उल्लेख चित्रलेखा उपन्यास में इस प्रकार किया गया है—'स्त्री शक्ति है, वह सृष्टि है यदि उस संचालित करनेवाला व्यक्ति योग्य है, वह विनाश है यदि संचालित करनेवाला व्यक्ति अयोग्य है।'[5] प्रभावती उपन्यास में प्रभावती मध्ययुगीन रूढ़िवादिता, उत्पीड़न और दासता के दुष्परिणामों से परिचित है तथा वह यह भी जानती है कि सर्वहारा वर्ग का समर्थन तथा उत्थान ही देश में वर्ग संघर्ष की स्थिति को समाप्त कर पायेगा

१ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर, पृ० १९४
२ वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व—डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश पृ० ४५
३ वृन्दावनलाल वर्मा—डा० रामदरश मिश्र, पृ० ५५
४ झांसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ४७३ ४७४
५ चित्रलेखा—भगवतीचरण वर्मा पृ० ५३

अत वह कहती है—"हमे प्रजा की सेवा के लिए अपना सर्वस्व दे देना होगा।"[1] 'दिव्या' तथा 'वैशाली की नगरवधू' मे नारी की विवश तथा असहाय स्थिति व यन्त्रणा से मुक्ति पाने का मार्ग बौद्ध धर्म की शरण लेना मात्र ही बताया है। वर्गों की स्थिति का उल्लेख आर्थिक, धार्मिक, सास्कृतिक दृष्टियो से किया गया है। 'जय यौधेय' मे—'वर्णाश्रम धर्म और बौद्ध धर्म की टकराहट चित्रित की गई है।"[2] वर्गों की स्थिति इसी टकराहट मे उलझी रहती है तथा सघर्परत बनी रहती है। अत ऐतिहासिक उपन्यासो म विभिन्न युगो का चित्रण किया गया है। "प्रत्येक युग की अपनी विशेषता होती है और विशेषताओं के सदर्भ मे व्यक्ति विशेष जीवन जीता है। शासक वर्ग से सम्बन्धित लोगो के जीवन मे अनेक आडम्बर, औपचारिकता, कृत्रिमता, घृणा, ईर्ष्या द्वेष आदि अनेक बातें हो सकती है। सामान्य लोगो का जीवन स्वतत्र हो सकता है और परतन्त्र भी।"[3]

ऐतिहासिक उपन्यासो में वर्ग-सघर्ष की दिशाएं

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यासो म 'वैशाली की नगरवधू' मे गणो तथा राज्यो का सघर्ष दिखाया गया है। "इस सघर्ष का मूल कारण यह था कि ब्राह्मण लोग राजाओं को अश्वमेध यज्ञ करने के लिए उकसाकर राज्य की सीमाओ का विस्तार चाहते थे कि उनके धर्म का प्रचार हो, क्योकि जितने गणराज्य थे वे आर्येतर थे। आर्यों के अतिरिक्त सारे देश म अनार्य थे। आर्य अत्यन्त विलासी मनोवृत्ति के थे और इस विलास-लिप्सा की तृप्ति के लिए अनार्य बालाओं का उपयोग करते थे।"[4] फलत धर्म के आधार पर शोषण आर्य तथा अनार्यों के सघर्ष का मूल कारण था। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' मे—'प्रेम-त्रिकोण की सृष्टि के फलस्वरूप मूल भाव के रूप मे सघर्ष की परिव्याप्ति है। यह सघर्ष कुलवधू और नगरवधू का है, सुहाग के नूपुरो तथा नर्तकी के घुघरुओ का है। माधवी और रुक्मणी के दो छोरो के बीच चेट्टीपुत्र कोवलन का द्विधाग्रस्त मन भटकता है।"[5] 'दिव्या' उपन्यास मे वर्णाश्रम और श्रमण धर्मों का सघर्ष, अभिजात्य और व्यवसायी-वर्ग की टकराहट का वर्णन किया गया है। राहुल साकृत्यायन के 'सिंह सेनापति' मे वैशाली गणराज्य तथा मगध साम्राज्य का सघर्ष भी धन-सम्पन्नता एव धनाभाव के

१ प्रभावती—निराला, पृ० ६४

२ हिन्दी उपन्यास मे नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल पृ० ४१३

३ उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियां—डा० सुरेश सिन्हा, पृ० १६७

४ हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा—डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० ३३५

५ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० १५५

कारण होता है—'वैशाली गणराज्य होने के कारण सामाजिक अवस्था में आस-पास के अन्य राजतन्त्रीय राज्यों से अधिक उन्नत और समृद्ध है। इसीलिए वह मगध जैसे साम्राज्य से टक्कर लेने में नहीं हिचकता।'[१] 'दिव्या' में वर्ग संघर्ष द्वारा समानाधिकार की चर्चा की गई है—"सामन्तगण संकटकालीन परिस्थिति से लाभ उठाकर अपनी शक्ति और धन को बढ़ाने की चाल चलते हैं और संकट तभी टलता है, जब पुरानी परिपाटियों को त्यागकर सारे गण के जनों को समानाधिकार दे दिए जाते हैं।'[२]

'गढ़ कुण्डार' में जातिगत अभिमान, स्त्री-सौन्दर्य तथा पारस्परिक माना-पमान के कारण युद्ध होते हैं। 'मृगनयनी' में भी सामन्तीय व्यवस्था के नियमों पर करारा प्रहार करते हुए शोषण के विविध बिन्दुओं को उभारा गया है। सामन्त-वर्ग तथा जनसाधारण में यही संघर्ष का कारण बनकर उभरा है—"वर्मा जी श्रम के पुजारी हैं। 'मृगनयनी', 'मुसाहिब जू' आदि में श्रम की महत्ता प्रतिपादित की गयी है।[३] जातिगत भेदभाव की समस्या को प्रस्तुत करते हुए संघर्ष की स्थितियां रही हैं। 'वयं रक्षाम' उपन्यास में 'रक्ष संस्कृति' के चित्रण के माध्यम से शोषण का एक विस्तृत चित्र खींचा गया है। यही शोषण वर्ग-संघर्ष का कारण बनता है—"अपनी 'रक्ष संस्कृति' को स्थापित करने के लिए उसने धर्म को त्याग दिया, नियमों का उल्लंघन किया। अधिक से अधिक पाप करने तक को वह प्रस्तुत हो गया था। उसने (रावण) अपनी संस्कृति के प्रसार के लिए अधिक से अधिक अत्याचार और पाप करने प्रारम्भ किए। नर-भक्षण उसका और उसके अनुयायियों का एक व्यापार हो गया था।"[४] 'रक्त की प्यास' में शैव राजा और जैन मन्त्री के संघर्ष का वर्णन है। यह संघर्ष कन्या के कारण हुआ। 'झांसी की रानी' में स्वराज्य-प्राप्ति हेतु संघर्ष की स्थितियां व्यक्त की गई हैं। यह संघर्ष अंग्रेजों से हुआ है। 'सुहाग के नूपुर' में यह संघर्ष कुलवधू और नगरवधू का है। सुहाग के नूपुर और नर्तकी के घुंघरुओं का संघर्ष है—"ज्यों-ज्यों सुहाग के नूपुर पान की अतृप्त लालसा प्रखरतर होती जाती है, त्यों-त्यों प्रतिक्रिया स्वरूप उसके वेश्या और सती-रूपों का संघर्ष भी तीव्रतर होता जाता है।"[५] 'मधुर स्वप्न' में 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' के सिद्धान्त को प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है।"[६]

---

१ हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४०२
२. वही पृ० ४०४
३. वृन्दावनलाल वर्मा—आचार्य बटुक, पृ० ६१
४ वयं रक्षाम—आचार्य चतुरसेन, पृ० १६६
५ हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० १५५
६ हिन्दी उपन्यास—सुषमा धवन, पृ० ३७३

ऐतिहासिक उपन्यासो मे विवेचित वर्ग

ऐतिहासिक उपन्यासो म शासक और शासित शोषक और शोषित वग के पात्रो का निरूपण हुआ है। इन उपन्यासो म अधिकाश पात्र सामन्त वग के हैं। दोनो वर्गों म भले बुरे सज्जन और दुजन दोनो ही प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। वर्मा जी के उपन्यासो म जो पात्र जिस वग से सबधित है वह उसका सच्चा प्रतिनिधि है— इनके उपन्यासो म राजा वग मन्त्री वग सेवक वग कलाकार वग प्रेमी वग लुटेरा वग साधु वग नारियो म रानिया सच्ची प्रेमिकाए पत्निया दासिया मनचली नारियाँ आदि सभी आई है। एक एक वग के पात्रो म बहुरूपता है। हुरमतसिंह नायकसिंह गगाधर राव जैसे विलासी एव क्रूर राजा के साथ ही साथ मानसिंह जैसा उदार कला प्रेमी और प्रजावत्सल राजा भी आया है।[1] आचाय चतुरसेन शास्त्री के अधिकाश पात्र प्रशासक एव सामन्त-वग के हैं। शासक और शासित दोनो ही प्रकार के पात्रो की तीन श्रेणिया है—पहली श्रेणी मे आदश शासक है जो जनता के रक्षक है। दूसरे व जो किसी सदुद्देश्य के लिए ही अपनी शक्ति का व्यय करते हैं जसे घोघाबापा धम गजदेव दद्दा चालुक्य भीमदेव दामो मेहता सामन्तसिंह सज्जनसिंह दुलभराय आदि (सोमनाथ) सोमप्रभ (नगरवधू) राम लक्ष्मण मेघनाद (वय रक्षाम) शिवाजी (सह्याद्रि की चट्टानें) खगार जी (लाल पानी) आदि दूसरी श्रेणी म हम उन वीर किन्तु विलासी राजाओ को लेते हैं नवाबो बादशाहो सामन्तो आदि को रख सकते हैं। व सुन्दरी और भूमि को वीरभोग्या बनाने के अभ्यासी हैं। महमूद (सोमनाथ) बिम्बसार दधिवाहन विदडभ (नगरवधू) रावण (वय रक्षाम) औरगजेब (आलमगीर) आदि।[2] तीसरी श्रेणी म वे पात्र आते है जिनका प्रधान लक्ष्य केवल भोग करना रहता है। तलवार तो उनका आभूषण मात्र है। व कायर डरपोक लोलुप कामुक विलासी एव स्वच्छाचारी है। अजयपाल चामुण्डराय (सोमनाथ) दारा शुजा (आलमगीर) महाराजाधिराज (गोली) जहागीर वजीरअली (धमपुत्र) आदि पात्रो को हम इस श्रेणी म रख सकते है। इसी प्रकार शासित नारी वर्ग व शोषित वग के अन्य पात्रो की भी तीन श्रेणियाँ मानी गयी हैं। राजा एव सामन्तवग क नारी पात्रो की भी तीन श्रेणिया हैं—प्रथम व जिनम राजपूती गौरव कूट कूटकर भरा है। अपनी मान मर्यादा की रक्षा-हेतु व प्राण उत्सग तक कर देती हैं। वे परमाथ के लिए त्याग करती है। चन्द्रप्रभा रोहिणी (नगरवधू) सीता मन्दोदरी सुलोचना (वय रक्षाम)

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा—डा० रामदरस मिश्र पृ० ७१

२ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर पृ० २४७

कुवरी (गोली), हुस्न बानो (धर्मपुत्र), चोला, शोभना, रमा (सोमनाथ), बेगम शाइस्ता खा (आलमगीर), लक्ष्मीबाई (सोना और खून) आदि। दूसरी श्रेणी मे व परिगणित की जा सकती हैं जिनके उद्देश्य दूषित हैं। अम्बपाली (नगरवधू), सूर्पनखा, मायावती (वय रक्षाम), इच्छनी कुमारी (रक्त की प्यास) आदि स्वार्थी प्रवृत्ति की नारिया हैं। तृतीय वर्ग की नारियों का उद्देश्य केवल भोग ही है, उनमे मान मर्यादा का कोई स्थान नही। वे पुरुष की भोग-सामग्री बनकर अपना जीवन-यापन करती हैं, जैसे चन्द्रमहल (गोली) हीराबाई (आलमगीर) आदि।

नारी के अतिरिक्त शोषित वर्ग के अन्य पात्रों की भी तीन श्रेणियां हैं—प्रथम श्रेणी के शोषितों का जीवन केवल स्वामी के लिए ही निर्मित होता है। वे अपने प्राणो का उत्सर्ग भी अपने अन्नदाता की सेवा मे समर्पित करना पसन्द करते हैं। वे साहसी, त्यागी, आज्ञाकारी एव स्वामीभक्त होते हैं। दूसरी श्रेणी मे शोषित वर्ग के ऐसे पात्र हैं जो अन्नदास नहीं होते। वे स्वामी के अभिभावक बन मनमानी करते हैं, जैसे मगाराम पोला (गोली)। तीसरी श्रेणी के पात्र सामन्त शाही शोषण के प्रतीक हैं—'जो अपने शासकों के अत्याचार सहन करके भी मूक हैं। व अत्याचारों के विरुद्ध जिह्वा खोलना चाहते हैं, किन्तु उसके पूर्व ही वे जिह्वा विहीन कर दिए जाते हैं। उनके शासक उनकी शक्ति को, उनकी बुद्धि को, उनकी मर्यादा का धन और शक्ति पर क्रय कर लेते हैं। धर्म और समाज के कृत्रिम बन्धनों के द्वारा भी ऐसे निरीह प्राणियों को जकड़ दिया जाता है जैसे किशनु (गोली) आदि।'[1] शासित नारियों की भी तीन श्रेणियां हैं—प्रथम श्रेणी में व नारियां आती हैं जिनका उद्देश्य मात्र स्वामिनी की सेवा करना है। शोभना (सोमनाथ) का उद्देश्य स्वामिनी के हेतु ही प्राण उत्सर्ग करना रहता है। दूसरी श्रेणी की नारियां उत्सर्ग की भावना से आविर्भूत होते हुए भी विवेक से काम लेती हैं। तीसरी श्रेणी की नारियां अपने रूप के कारण ही सामन्तशाही अत्याचारों को सहन करती है। कुछ तो अन्त समय तक अपने सतीत्व की रक्षा करती रहती हैं और कुछ मूल्य लेकर सतीत्व को बेच देती हैं तथा कुछ को विवश होकर ऐसा करना पड़ता है जैसे चम्पा केसर (गोली) आदि।

ऐतिहासिक उपन्यासों में विवेचित शोषक-वर्ग

राजा-वर्ग

राजा वर्ग के पात्रों मे शोषक की दृष्टि से जो अवगुण भरे रहते हैं, उनके उत्तराधिकारी को अवगुण हस्तान्तरित होकर उनके हृदय मे प्रविष्ट हो जाते

1 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर, पृ० २४६

है। विलासिता के कारण उनका आत्मबल जर्जर हो उठता है। मानवोचित मानवता एवं ममता कुंठित हो जाती हैं। इनकी प्रजा में अत्याचारों के कारण असंतोष की आंधी रह रहकर उठती है। वृंदावनलाल वर्मा जी के उपन्यासों में— हुरमतसिंह शराबी है, नायकसिंह यौन प्यास से पागल रहता है, गंगाधर राव भी शृंगार का पुजारी है।[1] सिंह सेनापति में राजाओं की वृत्ति का जिक्र करते हुए बताया है— राजाओं को नारी व नहीं चाहिए, उन्हें खेलने के लिए खिलौना चाहिए, एक से अधिक।[2] मृगनयनी में राजा सर्वहारा वर्ग का चिन्तक है। वह एक मजदूर के घर भेष बदलकर उसकी स्थिति का अवलोकन करता है तथा कहता है— धिक्कार है मुझको जो मैं तो भरपेट खो जाऊं और तुम लोग भूख मरो। मैं महलों में रहूं और तुम इस झोपड़ी में भूख ठण्ड मरो।[3] आपसी युद्ध में छोटे राजा के भाई ने महाराजा पर बहुविध अत्याचार किये— छोटे भाई ने महाराजा के सिर से पगड़ी उतार ली और वेश्या के स्तन की एक घुंडी काट ले गए। उसी पर उन्होंने अपना झण्डा फहराया।[4] जनानी डयोढी में राजा के व्यक्तित्व का बखान इस प्रकार किया गया है— हमारा महाराजा एक ऐयाश प्रेत है। गर्म गोश्त का सौदागर है।[5]

पुनर्नवा में हलद्वीप के राजा यज्ञसेन को नागवंश का बताया गया है। उनका पुत्र रुद्रसेन— वह लम्पट और दुर्वृत्त राजा सिद्ध हुआ। उसके औद्धत्य से हलद्वीप की प्रजा त्रस्त हो उठी। बहू बेटियों का शील राजा की जुगुप्सित लालसा की बलिवेदी पर घसीटा जाने लगा।[6] फलतः वर्ग संघर्ष प्रजा में व्याप्त हो गया। आयक के अतिरिक्त और किसी में साहस नहीं था जो अत्याचारों का विरोध करता। राजा निरंकुश हो गया। आये दिन प्रजा को लूटा जाता है, बहू बेटियों का शील नष्ट किया जाता है।[7] रजनीगंधा उपन्यास में महाराज शान्तनु प्रतापी राजा थे। उनकी रानी गंगा अपने इकलौते पुत्र देवव्रत को छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थी तथा शान्तनु विधुर जीवन व्यतीत कर रहे थे। महाराज ने निषादराज से भेंट में उनकी पुत्री को मांगा था। उसकी ओर वे आकृष्ट थे— निषादराज! मुझे भेंट देने के लिए तुम्हें विधाता ने वह अमूल्य रत्न पैदा किया है, जो मेरे राज्य में अन्य किसी को प्राप्त नहीं है।

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा—डा० रामदरश मिश्र पृ० ६१
२ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन पृ० ९९
३ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० ३७५
४ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर पृ० २०४
५ जनानी डयोढी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० १८
६ पुनर्नवा—हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ३७
७ वही पृ० ८०

वेश्याओं द्वारा सम्बन्ध बढ़ाता तो था, परन्तु परस्पर टकराव के कारण सेठों का संतुलन बिगड़ जाता था। ठकुराणी में इस वर्ग की विवेचना करते हुए कहा गया है—"इनके जीवन का सत्य है पैसा और इनकी आत्मा का संतोष और सुख है पैसा। इनका विश्वास अगर इनके अपने बेटे कर लें तो यह उनसे भी दो पैसे ठगने का प्रयास करेंगे।"[१] 'दिव्या' में श्रेष्ठी प्रतुल भी व्यापारिक दृष्टि से आशा रखता है—"श्रेष्ठी प्रतुल को आशा थी कि दिव्या को मगध व समृद्ध, रसिक ग्राहकों के हाथ बेचकर ऊंचा मूल्य पायगा। ऐसी रूपवती, लावण्यमती दासी के लिए चार सौ स्वर्ण-मुद्रा भी अधिक न थी।"[२] व्यापारियों की मुनाफा कमानेवाली नीति ने शोषण की प्रक्रिया अति भीषण कर दी तथा शोषित विद्रोहियों द्वारा समाज में वर्ग-संघर्ष फैल गया—"वर्ग-संघर्ष अभी भी जारी है, केवल उसका रूप बदल गया है। सर्वहारा-वर्ग का यह संघर्ष पुराने शोषकों को वापस आने से रोकने के लिए है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने हितों को इस संघर्ष के आधीन कर दें।"[३]

जमींदार-वर्ग

अंग्रेजी राज्य से पूर्व जमींदार तथा सामन्त-वर्ग का बहुत बोलबाला था, किन्तु अंग्रेजी राज्य में भी यह वर्ग मिट नहीं पाया क्योंकि—"ये सामन्त अक्षरशः सरकारी नीति का ही पालन करते थे। इन राजाओं की शिक्षा-दीक्षा विदेशी ढंग की तथा विदेशियों द्वारा ही सम्पन्न की जाती थी जो उन्हें प्रजा पालक न बनाकर विलासप्रिय तथा अंग्रेज-भक्त बनाने में अधिक सफल होती थी।"[४] 'अकबर के राज में महाराज टोडरमल ने सम्राट् और प्रजा के बीच एक बिचौलिया अफसर नियुक्त किया। उस अफसर को जमींदार कहा जाता था। रैयत से लगान वसूल करने और जमीन का उचित बन्दोबस्त करने के लिए जमींदार और आमिल को नौन कर के रूप में जमीन मिलती थी। साथ ही एक मातहत अफसर कानूनगो भी मिलता था।'[५] "जमींदार कुंवरसिंह मझोले कद और छरहरे बदन के जवान थे। गाना, नाचना, शराब, औरतबाजी, आस-पास के गांव की जमीनें लूटना, कत्ल करना, अपने दलवालों को बख्शीशें देना आदि काम लाल कुंवरसिंह द्वारा होते थे।"[६] जमींदार-घराने में कन्या जन्म के

१ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ५६
२ दिव्या—यशपाल, पृ० १२३
३ संस्कृति और सांस्कृतिक क्रान्ति—लेनिन ब्लादीमीर, पृ० ११४
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी पृ० २१४
५ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० १२७
६ वही, पृ० १२६

समय अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गया था—"लाल कुवरसिंह की नवजात कन्या की पहली धुआ-कुआ करते ही दाई ने उसके मुख म मदार के पत्ते का दूध टपकाना आरम्भ कर दिया था। दाई ने बच्ची को मदार का दूध पिलाकर उसके मुख म गर्भ का मल भर दिया। जच्चा की खाट के पास गड्ढा खोदकर जैसे तैसे शिशु का शव तोप दिया और भागने की तैयारी म लगी।'[१] इस जमीदार-वर्ग के मनुष्यो का स्वभाव ऐश्वर्यमय बन गया था— यह जमीदार अपने ऐश्वर्य से सतुष्ट नही था। तृष्णा के प्रभाव से उसने अमानुषिक कार्य करने आरम्भ कर दिए थे। शराबी और व्यभिचारी होना कम दुर्गुण नही है, पर इसने गरीबो को लूटना और भूखो मारना प्रारम्भ कर दिया था। इसका जीवन हजारो मृत्यु के बराबर था।"[२] जमीदार के इस शोषण म सहायक समस्त सामन्त-वर्ग था।

सामन्त-वर्ग

राजा नायकसिंह (विराटा की पद्मिनी) तथा जनार्दन शर्मा सामन्त-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। "राजा नायकसिंह विलासी, सनकी और उदार है। सामन्त-वर्ग की समस्त दुर्बलताए सबलताए उसमे है। देवीसिंह मे सामन्तीय कुचक्र तो है परन्तु वीरता तथा उदारता भी है। उसका सम्पूर्ण चरित्र आदर का पात्र नही। जनार्दन शर्मा धूर्त और चालबाज है। सामन्तीय दाव-पेचो से, धूर्तता और चालबाजी से उसका चरित्र पूर्ण है।"[३] अपने इसी व्यवहार द्वारा गरीब जनता के शोषण की निरन्तरता ने समाज मे वर्ग सघर्ष की परिस्थितिया उत्पन्न कर दी। सामन्त-वर्ग के अत्याचार का वर्णन 'चीवर' म मिलता है, मित्तकाली कहती है—"मुझे सामन्त देवक ने विवाह के बाद पकडवाकर मेरी सुहागरात को ही बुलवा लिया था। मेरा पति छाते बनाता था। उसस न देखा गया तो वह विरक्त हो भिक्षु हो गया।'[४] 'ठकुराणी' उपन्यास मे अनूपसिंह सामन्त-वर्ग का है—"उस अनूपसिंह की बात ही मत पूछो। वह केसर के नाम से चिढता है। दिनभर शराब के नशे मे चूर वह हमारी बहू-बेटियो की इज्जत से खेलता है।"[५] छोटी-छोटी बालिकाओं पर अपनी वासनात्मक हवस मिटाने के लिए निरन्तर अत्याचार करता है। आज भी यदा-कदा ऐसे छुटपुट अत्याचार होते है, किन्तु लोगो की सामन्ती मनोवृत्ति अभी तक नही बदली है। फलत समाज म सर्वत्र वर्ग-सघर्ष

१ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० १२६
२ पतन—भगवतीचरण वर्मा पृ० ६
३ वृदावनलाल वर्मा—आचार्य वटुक, पृ० ७४
४, चीवर—रागेय राघव, पृ० २१
५, ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १६१

वेश्याओं द्वारा सम्बन्ध बढ़ाता तो था परन्तु परस्पर टकराव के कारण सेठों का संतुलन बिगड़ जाता था। ठकुराणी में इस वर्ग की विवेचना करते हुए कहा गया है— इनके जीवन का सत्य है पैसा और इनकी आत्मा का संतोष और सुख है पैसा। इनका विश्वास अगर इनके अपने बेटे कर लें तो यह उनसे भी दो पैसे ठगने का प्रयास करेंगे।[1] दिव्या में श्रेष्ठी प्रतुल भी व्यापारिक दृष्टि से आशा रखता है— श्रेष्ठी प्रतुल को आशा थी कि दिव्या का मगध के समृद्ध रसिक ग्राहकों के हाथ बेचकर अच्छा मूल्य पायेगा। ऐसी रूपवती लावण्यमती दासी के लिए चार सौ स्वर्ण मुद्रा भी अधिक न थी। व्यापारियों की मुनाफा कमानेवाली नीति ने शोषण की प्रक्रिया अति भीषण कर दी तथा शोषित निम्न स्त्रियों द्वारा समाज में वर्ग-संघर्ष फैल गया— वर्ग-संघर्ष अभी भी जारी है केवल उसका रूप बदल गया है। सर्वहारा-वर्ग का यह संघर्ष पुराने शोषकों को वापस आने से रोकने के लिए है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने हितों का इस संघर्ष के आधीन कर दें।[3]

जमींदार-वर्ग

अंग्रेजी राज्य से पूर्व जमींदार तथा सामन्त वर्ग का बहुत बोलबाला था किन्तु अंग्रेजी राज्य में भी यह वर्ग मिट नहीं पाया क्योंकि— ये सामन्त अक्षरशः सरकारी नीति का ही पालन करते थे। इन राजाओं की शिक्षा-दीक्षा विदेशी ढंग की तथा विदेशियों द्वारा ही सम्पन्न की जाती थी जो उन्हें प्रजा पालक न बनाकर विलासप्रिय तथा अंग्रेज भक्त बनाने में अधिक सफल होती थी।[4] अकबर के राज में महाराज टोडरमल ने सम्राट् और प्रजा के बीच एक बिचौलिया अफसर नियुक्त किया। उस अफसर को जमींदार कहा जाता था। रैयत से लगान वसूल करने और जमीन का उचित बन्दोबस्त करने के लिए जमींदार और आमिल को नौनकर के रूप में जमीन मिलती थी। साथ ही एक मातहत अफसर कानूनगो भी मिलता था।[5] जमींदार कुंवरसिंह मझोले कद और छरहरे बदन के जवान थे। गाना नाचना शराब औरतबाजी आस पास के गांव की जमीनें लूटना कत्ल करना अपने दलवालों को बख्शीशें देना आदि काम लाला कुंवरसिंह द्वारा होते थे।[6] जमींदार घराने में कन्या जन्म के

---

१ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० २६
२ दिव्या—यशपाल पृ० १२३
३ संस्कृति और सांस्कृतिक क्रान्ति—लेनिन ब्लादीमीर पृ० ११४
४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी पृ० २१४
५ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर पृ० १२७
६ वही पृ० १२६

समय अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था—"लाल कुंवरसिंह की नवजात कन्या की पहली कुआं-कुआं करते ही दाई ने उसके मुख में मदार के पत्तों का दूध टपकाना आरम्भ कर दिया था। दाई ने बच्ची को मदार का दूध पिलाकर उसके मुख में गर्भ का मल भर दिया। जच्चा की खाट के पास गड्ढा खोदकर जैसे-तैसे शिशु का शव तोप दिया और भागने की तैयारी में लगी।"[1] इस जमींदार-वर्ग के मनुष्यों का स्वभाव ऐश्वर्यमय बन गया था— यह जमींदार अपने ऐश्वर्य से सन्तुष्ट नहीं था। तृष्णा के प्रभाव से उसने अमानुषिक कार्य करने आरम्भ कर दिए थे। शराबी और व्यभिचारी होना कम दुर्गुण नहीं है, पर इसने गरीबों को लूटना और भूखों मारना प्रारम्भ कर दिया था। इसका जीवन हजारों मृत्यु के बराबर था।"[2] जमींदार के इस शोषण में सहायक समस्त सामन्त-वर्ग था।

सामन्त-वर्ग

राजा नायकसिंह (विराटा की पद्मिनी) तथा जनार्दन शर्मा सामन्त-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। "राजा नायकसिंह विलासी, सनकी और उदार है। सामन्त वर्ग की समस्त दुर्बलताएं सबलताएं उसमें हैं। देवीसिंह में सामन्तीय कुचक्र तो है परन्तु वीरता तथा उदारता भी है। उसका सम्पूर्ण चरित्र आदर का पात्र नहीं। जनार्दन शर्मा धूर्त और चालबाज है। सामन्तीय दांव पेचों से, धूर्तता और चालबाजी से उसका चरित्र पूर्ण है।"[3] अपने इसी व्यवहार द्वारा गरीब जनता के शोषण की निरन्तरता ने समाज में वर्ग-संघर्ष की परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं। सामन्त-वर्ग के अत्याचार का वर्णन 'चीवर' में मिलता है, मिसकाली कहती है—"मुझे सामन्त देवक ने विवाह के बाद पकड़वाकर मेरी सुहागरात को ही बुलवा लिया था। मेरा पति छाते बनाता था। उससे न देखा गया तो वह विरक्त हो भिक्षु हो गया।"[4] 'ठकुरानी' उपन्यास में अनूपसिंह सामन्त-वर्ग का है—"उस अनूपसिंह की बात ही मत पूछो। वह केसर के नाम से चिढ़ता है। दिनभर शराब के नशे में चूर वह हमारी बहू-बेटियों की इज्जत से खेलता है।"[5] छोटी-छोटी बालिकाओं पर अपनी वासनात्मक हवस मिटाने के लिए निरन्तर अत्याचार करता है। आज भी यदा-कदा ऐसे छुटपुट अत्याचार होते हैं, किन्तु लोगों की सामन्ती मनोवृत्ति अभी तक नहीं बदली है। फलतः समाज में सर्वत्र वर्ग-संघर्ष

---

१ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० १२६
२ पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६
३ वृन्दावनलाल वर्मा—माधव मन्दिर, पृ० ७४
४. चीवर—रांगेय राघव, पृ० २१
५. ठकुरानी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १६१

व्याप्त है। 'सोमनाथ' उपन्यास में कृष्णस्वामी महासेनापति की आज्ञापालना में अपनी पत्नी उन्हें समर्पित करना चाहता है—' शोभना की माँ ! महाराज सेनापति की आज्ञा है। वह तो माननी ही पड़ेगी। रमा ने खीझकर कहा—क्यों माननी पड़ेगी ? मैंने सेनापति से ब्याह नहीं किया, न उनकी दबैल हूँ। महासेनापति मेरे सामने तो आयें। कौन से शास्त्र वचन से वे पत्नी को पति चरणों से दूर रखते हैं, पत्नी को घर से निकालते हैं, सुनूँ तो ! बड़े आये सोसमार खाँ।'"[1] शोषण की निरन्तरता ने उसमें विद्रोह का बीजारोपण कर दिया है। अतः वर्गगतसंघर्ष की ओर उन्मुख है। 'शाह और शिल्पी' में सामन्त-वर्ग विमलशाह से अत्यधिक द्वेष रखते थे। अतः उसके विरुद्ध निरन्तर षड्यन्त्र रचते रहते थे। विमलशाह गुजरात के पराक्रमी दण्डनायक थे। षड्यन्त्रकारियों ने एक बलिष्ठ मल्ल को पाटन में बुलाकर विमलशाह को उसके साथ मल्ल-युद्ध में भिड़ा दिया। ' ईर्ष्यालु षड्यन्त्रकारी सामन्त मन ही मन खुश हो रहे थे कि विमलशाह नहीं बचेंगे। उन्होंने विदेशी यमदूत को भली प्रकार समझा दिया था कि जैसे भी हो उचित तथा अनुचित रीति से दण्डनायक की गर्दन तोड़ देनी है। थोड़े धन के लालच में उन षड्यन्त्रकारियों के हाथों में बिका हुआ वह गुलाम सोच रहा था कि बड़े-बड़े मल्ल उसके सामने टिक नहीं पाते तो ये वणिक विमलशाह क्या टिक सकेंगे ?"[2] परन्तु हुआ इसके विपरीत ही। इस प्रकार ये सामन्त-वर्ग के लोग कुचक्रों की प्रक्रिया में दिनरात उलझे रहते थे। 'परपीड़न' द्वारा स्व-सन्तोष की अनुभूति ही उनका परम ध्येय था, परन्तु उनका यह षड्यन्त्र अधिक दिन नहीं चल सकता था। जैसे ही शोषित वर्ग में चेतना उजागर हुई, वैसे ही समाज में वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

ठाकुर-वर्ग

ठाकुर-वर्ग, राजा वर्ग के पश्चात् दूसरी श्रेणी के शोषक वर्गों में ताल्लुकेदार आता है। 'ठकुराणी' उपन्यास में ठाकुर खीवसिंह के क्रूर व्यक्तित्व का वर्णन मिलता है—"ठाकुर खीवसिंह अत्यन्त अन्यायी और एय्याश था। अपने अधीन गाँवों से वह गरीबों की सुन्दर बेटियों को कुट्टनियों द्वारा फुसला-फुसलाकर, धमकाकर या उनकी गरीबी का अनुचित लाभ उठाकर अपनी जनानी ड्योढ़ी में मँगवा लेता था और कुछ दिनों तक उनकी जवानी का उपभोग करके नारकीय यन्त्रणाएं भोगने के लिए बड़े-बड़े बुर्जों से घिरी जनानी ड्योढ़ी में बन्द कर देता था।"[3] ठाकुर वर्ग किसानों का निरन्तर शोषण किया करता था— अनाज

१ सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन पृ० २८६-२८७
२ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल पृ० ८२
३ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १०

के अलावा मल्वा खच जाजम खच कुंअरजी के नोवा बाई जी का हाथ कारज खच पडवा मख नाई ब्राह्मण चमार चौकीदार पटवारी कामदार सबका खच ठाकुर लोग इन भूखे नग शोषित अन्नदाताओं पर डाल देते थे। यदि किसान ये नही दे पाते तो उनके गाय बैल खुलवा लिए जाते थे।[1] पतन में राजा श्यामसिंह ताल्लुकेदार वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वह क्षत्रिय है तथा नवाब वाजिदअली शाह का शुभचिंतक है। जब वाजिदअली शाह ने श्यामसिंह से कहा — राजा साहब! क्या करू कुछ समझ में नही आता। बड बुरे शगुन हो रहे हैं। तब श्यामसिंह ने उत्तर दिया हुजूर मैंने आपसे अर्ज किया न कि राज्य का काम आप अपने हाथ में ले लें। आपके मुसाहिब ही आपकी जडें काट रहे हैं।[2] इस प्रकार वह राज्य में चल रहे षडयन्त्र की ओर इंगित करता है। श्यामसिंह सामन्त वर्ग का श्रेष्ठ पात्र है। नवाब के नाम पर चल रहे प्रजा पर शोषण की सूचना देते हुए कहता है — कामदार लक्ष्मी का वाहन है। वह धन से इस तरह चिपका रहता है जैसे जोंक। उसने डयोढी की एक एक औरत का शोषण किया है। वह रुपये से लेकर हजार रुपये तक की घूस खाता है। आयी हुई लक्ष्मी को कभी नही ठुकराता। तुम एक पैसा दो हसकर ले लेगा।[3]

ठकुराणी में वर्णित ठाकुर वर्ग अपनी पुत्री के विवाह उत्सव पर उचित अनुचित तरीके से गाववालो से रुपया वसूली करता था। ठाकुर अनूपसिंह अपाहिज एव नपुसक थे। केसर का विवाह उनके पिता ने धन के मोह में आकर कर दिया था। ठकुराणी केसर ने जब ठाकुर अनूपसिंह को चन्दा वेश्या पर आसक्त पाया तो उह सहन नही हुआ — सूरजकुवर ने आवेश में आकर ठाकुर के प्रति अपमानसूचक शब्द निकालते हुए चन्दा के बारे में कहा — उस साली रण्डी ने आप दोनों को मूर्ख बना रखा है। ठाकुर तैश में आ गया। उसने सूरजकुवर के गाल पर चाटा मार दिया और कडककर कहा — मैं ठाकुर हू और तुम मेरे पाव की जूती। जूती को बदलते देर नहीं लगते हैं।[4] सोमनाथ में यही वर्ग सर्वेसर्वा बताया गया है किन्तु दरबार की आवश्यकता पर उनकी हाजरी बजाना तथा कर देना इनके लिए आवश्यक था — कच्छ में बहुत से भायात ठाकुर गिरिराजसिंह जागीरदार के अधीन थे। ये सब छोटे छोटे राजा थे और अपनी अपनी रियासत का प्रबन्ध स्वय करते थे केवल गुजरेश्वर को कर देते

---

१ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० १७
२ पतन—भगवतीचरण वर्मा पृ० ३७
३ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० ४२
४ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० १३१

थे और दरबार म आवश्यकता पडने पर हाजरी बजाते थे। [1] ठाकुर-वर्ग का अ याचारी शोपण चक्र अनेक उपन्यासो म दृष्टिगत होता है।

उद्योगपति-वर्ग

'सुहाग के नूपुर' म कोवलन ने सम्मिलित व्यापारिक नीति का श्रीगणश किया किन्तु उसकी दृष्टि शोपक की ही बनी रही— विदेश स लौटने के बाद कोवलन अपना अधिकाश समय श्वसुर के साथ ही बिताता था। जल और स्थल मार्ग की एक बहुत बडी बडी जुड जाने स कोवलन का भविष्य अपने समकक्ष उद्योगपतियो की बडो से बडी महत्त्वाकाक्षाओ की सीमाए लाघकर उनकी स्पर्धा के क्षेत्र से बहुत ऊचा उठ चुका था। इस समय नगर म कोवलन को वही मान प्राप्त था जो प्राय चक्रवर्ती सम्राटो को अपने अधीनस्थ राजा महाराजा स प्राप्त होता था। [2] यवना के रोमन व्यवसायियो के जाते ही कावेरीपट्टणम् की कोठियो का दिवाला पिट जाता है— व्यावसायिक सौदे इधर वर्षों से महाजनी कोठियो मे नही, वरन वश्याओ के कोठो पर हुआ करते थे।' [3] जब भूख और गरीबी के विरुद्ध कोई लाल थैलो म कलदार की टकार करता है तो मनुष्य का धर्म डगमगा जाता है। मा बाप का ज्ञान अधा हो जाता है। फिर जब अकाल पडता है तो छोटी छोटी बालिकाए काफी सस्ती बिकने लगती है।' [4] व्यावसायिक एव उद्योगपति-वर्ग सोने की ताक म लगे पैस के वशीभूत होकर शोषण करते हैं।

ब्राह्मण-वर्ग

ब्राह्मण वग भी मध्यकाल म शोपक वर्ग बना रहा है। धम की आड म निरन्तर धन तथा स्त्री का शोपण करता रहा है। ब्राह्मणो ने यज्ञो को प्रधानता दे रखी थी। उसकी आड म नाना प्रकार के अनाचारो की वृद्धि हो रही थी। बछडे, बैल, भेड आदि पशुओ स गवालम्भन-अनुष्ठान किया जाता था। कामिनी और कादम्ब का व्यापक प्रयोग दिखलाई पडता था। प्राय सभी मास खाते थे और जिसम भैंसे अधिक प्रयोग करते थे।' [5] 'जय योधेय' म वैशाली की नगरवधू उपन्यास के ब्राह्मण वग की इसी भावना का उल्लेख किया गया है— 'यहा ब्राह्मणो का जादू है। यह राजा के साथ मिलकर बहुजन की कमाई लूटन

१ सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन पृ० ११४
२ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर पृ० १३१
३ वही पृ० १३३
४ जवानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० २४
५ हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद—डा० त्रिभुवनसिंह पृ० १६३

के सिवा और कुछ नहीं है।[1] इस प्रकार ब्राह्मण वग के श पण के कारण भी समाज म सवत्र सघप फैला हुआ दिखाई देता था जिसकी परिधि कुछ कम अवश्य हुई है परन्तु पूणत समाप्त नहीं हुई। ब्राह्मणा म स्वय अपना ही परिव्राजक जब ब्राह्मणा के समूह म जाकर भिक्षा की याचना करता है तो ब्राह्मण उसे भिक्षा न देकर उसकी प्रताडना करते हैं— अरे मूख यहा ब्राह्मणा के लिए अन्न तयार होता है चाण्डालो के लिए नहीं भाग यहा से! अरे दुष्ट चाण्डाल तू अपने को मुनि कहता है? नहीं जानता पृथ्वी पर केवल हम ब्राह्मण ही दान पाने के प्रकृत अधिकारी हैं? ब्राह्मण ही को दिया दान पुण्य फल देता है।[2] एकदा नैमिषारण्य म ब्राह्मणा की स्थिति का गम्भीरतापूर्ण विवेचन किया गया है— जो ब्राह्मण सम्पन्न हैं व यज्ञादि का त्याग कर इद्र से सबधित कतिपय वदो का उच्चारण कर भूत प्रत यक्ष आदि से पीडित जनो को ठगते हैं।[3]

मुर्दों का टीला उपन्यास म नीलूफर से वणी कहती है कि— मैं द्रविड हू। उन्ही म से एक हू। आज याद दिलाने आयी हो जब मेरे बिना काम नहीं चल सकता? उस दिन सब भूल गए थे जब द्रविडा का अधिपति मुझसे बलात्कार करना चाहता था और द्रविडो के पुजारी उस बलात्कार को धम से याय के लिए तत्पर बठे थे। माता पिता भाई भगिनी कीकट नगरवासी किसी म भी इतना साहस न था कि व एक अत्याचारी का गला घोट सकें।[4] ब्राह्मणो की अत्याचारी नीति के द्वारा अनेक तक वितक उत्पन्न हुए। शोषित लोगो के मध्य सघप की स्थिति बनी। ब्राह्मण धम की निरकुशता एव स्वच्छन्दता के कारण इतर वण उनसे द्वष रखने लगे थे। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण स्वय भी स्वार्थी और लोलुप हो चुके थे। ये पाखण्ड करके दान दक्षिणा म सुदर दासिया को ले जाते थे उनके आभूषण उतार उन्ह पाच-पाच निष्क म वृद्धो को बेच दिया करते थे। आर्थिक शोपण करन म यह वग बहुत ही चतुर रहा है। ब्राह्मण उस काल के सामन्तो और राजाओ को परमेश्वर घोषित करते उन्ह ईश्वरावतार प्रमाणित करते और उनके सब एश्वर्यों को पूव जन्म के सुकृत का फल बतलाते थे। इसके बदले म व उनसे बडी बडी दक्षिणाए फटकारते और स्वण भूषिता दासिया दान मे पाते थे।[5] राजा तथा नवाब शासन की बागडोर चाटुकार ब्राह्मणो तथा मौलवियो के हाथो म सौंप देते थे। फलत अत्याचार

---

१ जय यौधय—राहुल साकृत्यायन पृ० ३४
२ वशाली की नगरवधू—आचाय चतुरसेन पृ० ४२६
३ एकदा नमिषारण्ये—अमृतलाल नागर पृ० १७९
४ मुर्दों का टीला—रागय राघव पृ० ५०५
५ वशाली की नगरवधू—आचाय चतुरसेन पृ० ५१
६ वही पृ० २११

की सीमा अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। 'एक ही रास्ता' उपन्यास में इसी प्रसग में मौलवियों के अत्याचारों का उल्लेख हुआ है—"वह तो शासन की बागडोर को चन्द चाटुकार मौलवियों के हाथों छोड़ विलासिता के झूले में झूल रहा है।"[1] इसमें सरफराज के समय मौलवियों द्वारा किये गए अत्याचारों का पर्याप्त वर्णन हुआ है।

सेठ-साहूकार-वर्ग

सेठ साहूकार-वर्ग के पात्र सदैव अपने अधीन वर्ग पर अत्याचार करते रहे हैं। यह अत्याचार सदैव पैसे के बल पर ही रहा है। 'अमृतपुत्र' उपन्यास का सिद्दीक सेठ इसी प्रकार का अत्याचारी पात्र है—" 'क्या नाम है तुम्हारा ?' 'रहीम है हुजूर ! गरीब आदमी हूं।' 'खम्भात में क्या करते थे ?' सिद्दीक सेठ की गुलामी करता हूं। जानवरों की तरह काम लेता है वह और ध्यान का चद टुकड़े भी नहीं देता।' "[2] 'जय जगतधर बादशाह' उपन्यास में सेठ-साहूकारों का धन्धा लेन-देन का होता है, इस पर खुलकर विस्तृत विचार किया है। इस धन्धे से लाभान्वित अमीर-वर्ग ही होता है, निम्न तथा गरीब-वर्ग तो शोषित ही रहता है—"यहां साहूकारों का यह मुख्य धन्धा है। रोज लाखों रुपयों का लेन-देन बातों ही बातों में होता है। चांदी की ईंटें एक घर से दूसरे पर रोज जाती हैं।"[3] 'मुसाहिबजू' में इस बात को अति प्रभावपूर्ण ढंग से कहा गया है—"पूंजीवादी समाज-व्यवस्था में शोषक व शोषित-वर्ग का परस्पर सबंध नक्दनारायण पर अवलम्बित तथा उससे प्रभावित रहता है।"[4] 'जनानी ड्योढ़ी' उपन्यास में गरीब-वर्ग की अवस्था का चित्रण करते हुए कहा है कि भूख और गरीबी के विरुद्ध कोई लाख थैली के कलदार की टक्कर करता है तो मनुष्य का धर्म डगमगा जाता है। मां-बाप का ज्ञान अन्धा हो जाता है।"[5] इस अवस्था में सेठ-साहूकार लोग भरपूर फायदा उठाते हैं। गरीबों का शोषण करते हुए अपनी काम-तृष्णा की तृप्ति भी करते हैं। अतः मुनाफावृत्ति के कारण शोषण की प्रक्रिया के विरुद्ध, अब जन-सामान्य सचेत होकर आवाज उठाने लगा है। अपनी संघर्षवृत्ति द्वारा अपनी मुक्ति की ओर अब सशक्त कदम उठाने में निम्न वर्ग तत्पर है।

---

१ एक ही रास्ता—सुदेश रश्मि, पृ० ६
२ अमृतपुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० १६२
३ जय जगतधर बादशाह—धर्मेश शर्मा, पृ० ६२
४ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन पृ० २३६
५ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २४

ऐतिहासिक उपन्यासो में शोषित-वर्ग

शोषित-वर्ग अपन शोषण का प्रतिकार किससे ले ? उस मनुष्य से ले जिसके कारण उसका सदैव अपमान हुआ है या उन लोगो से ले जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए जन्म के असत्य अधिकार की व्यवस्था निर्धारित की है ? 'दिव्या' उपन्यास में दास-वर्ग तथा शोषित-वर्ग की व्यवस्था दी गयी है—'हीन कहे जानेवाले कुल म मेरा जन्म अपराध है ? अथवा यह द्विज-कुल मे जन्मे अपदार्थ लोगो का अहकार मात्र है।'[1] सर्वहारा-वर्ग शोषित-वर्ग ही है। उसका समर्थन करते हुए, उसकी शक्ति के बारे में यशपाल सघर्ष की स्थिति का चित्रण करते हैं। 'अमिता' मे महारानी नन्दा से महास्थविर कहते हैं—' इस दिव्य शक्ति के चमत्कार से अशोक और मगध की असख्य हाथी, घोडों और रथो की सेना साधको के श्वास की वायु से ऐसे उड जायेगी जैसे वर्षा ऋतु की पहली आधी मे ग्रीष्म से सूखे झाड-झखाड उड जाते है।'[2]

मजदूर-वर्ग

शोषित-वर्ग मे मजदूर-वर्ग का बहुविध शोषण हुआ है। कम पैसे देकर अधिक कार्य कराने की नीयत इस वर्ग-विशेष के प्रति, शोषक-वर्ग की रही है। 'झासी की रानी' उपन्यास मे भी मजदूर-वर्ग तथा एलिस के मध्य सघर्ष की स्थिति बनी रहती है। अग्रेजों के राज्य मे इस वर्ग का मुखिया भी अपने वर्ग के प्रति सद्भावना नही रखता है—"मैदान की सफाई करने वाले मजदूर जरा ढीले पड रहे थे। एलिस को क्षोभ हुआ। उसने मजदूरो के मुखिया को डाटा। मुखिया ने कहा, ये मुफ्तखोर हैं हुजूर! डर के मारे मैंने अभी तक इनकी मारपीट नही की। अब हड्डी-पसली तोडता हू।"[3] मजदूर-वर्ग अज्ञानी होते हुए भी अपनी मेहनत पर ही विश्वास करता है। 'मृगनयनी' उपन्यास मे राजा जब एक मजदूर के घर जाकर उसे कहता है कि इस तरह क्यो भूखे मरते हो? राजा के सदावर्त से आटा दाल ले आया करो। राजा मजदूर का वेश बनाये हुए था। तब मजदूर जवाब देता है—"वाह! हम क्या भिखमगे हैं ? सदावर्त पर तो कोढी, अपाहिज, साधु-बैरागी जाते हैं। हम तो मजदूर हैं।"[4] मजदूरो का सदाचार तथा अपने आश्रयदाता के प्रति आदर के विचारो ने ही मजदूरो को भयकर शोषण सहने के प्रति आग्रह किया, परन्तु आज यह शोषित-वर्ग भी सचेत हो

---

१ दिव्या—यशपाल पृ० १८

२ अमिता—यशपाल, पृ० ६५

३. झासी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १७१

४. मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३७३

चुका है तथा सघर्ष के लिए तत्पर है। 'जय यौधेय' उपन्यास म एक कथन से स्पष्ट होता है कि—"सैकडो प्रयत्न करन वालो म यदि एक सफल होता है, तो उस सफलता की जड मे निन्यानवे असफल कहलान वालो का परिश्रम भी शामिल है।"[1] अत सफलता प्राप्ति पर मुनाफे का हिस्सेदार यह परिश्रमी-वर्ग भी होता है जो वास्तव म श्रमजीवी कहलाता है। इस चेतना के पश्चात् सबसे अधिक परिवर्तन तो हमारे दासो और मजदूरो ने देखा है। मजदूर अपनी इस स्थिति के प्रति सघर्षरत थे क्योकि "मजदूरो से ज्यादा से ज्यादा काम और कम से कम दाम, और साथ-साथ जितना हो सके उतना अपमान सनातन से चला आया था। उनके लिए निकृष्ट भोजन कुत्ते की तरह डाल दिया जाता था।"[2] किन्तु अब मजदूर अपना लाभ-हानि समझने लगा था।

किसान-वर्ग

किसान वर्ग भी शोषित वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता है। 'ठकुराणी' उपन्यास मे हरखू किसान सभी की क्षुधा-शान्ति के लिए अन्न उपजाता है, परन्तु उसका स्वय का बेटा भूखे तडप-तडपकर मर जाता है। उसकी पत्नी प्रयत्न कर-करके जब थक गयी और उसे कही से भी आर्थिक सहायता नही मिली, तब वह अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट करती है—"कौन सुनता है गरीबो का रोना! इस ससार मे अमीर की एक आह बहुत असर करती है। किन्तु गरीब का क्रन्दन भी बेअसर होता है।"[3] अपने पुत्र को खोकर वह विक्षिप्त हो उठती है। जब चारो ओर जन मानस दाने-दाने के लिए पीडित था, तब भजनानन्द जी अपने चेला की श्रीवृद्धि म सलग्न थे—"आजकल गाव-गाव घूमकर वे पीडित और भूख किसानो क नन्हे-मुन्ने फल से कोमल बच्चो को खरीद रहे थे।"[4] इस प्रकार कम दामो म बच्चो, गायो बैलो को खरीदकर वे मुनाफा कमाते हुए इन्हें अन्यत्र बेच देते थे। यह था इस वर्ग के शोषण का स्वरूप। इसी शोषण ने किसानो को सगठित होकर सघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की। 'चीवर' उपन्यास मे भी हर्षवर्धन के समय किसानो की शोषण प्रक्रिया का वर्णन किया गया है—"हर्षवर्धन के पास ५००० हाथी, बीस सहस्र अश्वारोही और अर्द्ध लक्ष पदातिक थ। इन पर प्रतिदिन असख्य धन व्यय होता था जो कृषको के पास से आता था।"[5] इस प्रकार किसान वर्ग उत्पादककर्ता होते हुए भी अपना जीवन

---

१ जय यौधेय—राहुल साकृत्यायन, पृ० १५
२ वही पृ० २८०
३ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ० १३
४ वही, पृ० ११
५ चीवर—डा० रागेय राघव, पृ० १२१ १२२

कड़की मे व्यतीत करता था। यही विषम स्थिति उसके संघर्ष का कारण बनी और वह वर्गगत संघर्ष की ओर उन्मुख हुआ। 'मृगनयनी' उपन्यास की लाखी इस वर्ग की चेतना से युक्त है, वह कहती है—"अच्छी मजदूरी मिल जाय और जात-पात वाले तग न करें तो हमारे लिए यही सब कुछ है।"[1] क्योंकि यह वर्ग मेहनती वर्ग था, अत जब औद्योगीकरण एव मशीनीकरण की समस्या सामने आयी तो यह वर्ग भी मजदूरी करने के लिए विवश हो गया। अकाल, साझे की जमीन आदि कई तत्वो एव सघटको ने इस वर्ग को मजदूर बनने को विवश कर दिया—"गावो मे किसानो ने लगान देने से इन्कार कर दिया है। अकाल के कारण से उत्पन्न हुई दुर्दशा और ठाकुर व जागीरदारो के अत्याचारो से व पीड़ित थे।"[2] निरन्तर पीडा से यह वर्ग जब सचेत हुआ तो चेतना के प्रादुर्भाव के साथ-साथ सर्वहारा-वर्ग मे सम्मिलित होकर संघर्षरत हो गया। यह सर्वहारा-वर्ग अपनी समठित शक्ति मे आस्था रखता था।

दास-दासी-वर्ग

मध्यकाल के प्रारम्भ से लेकर सामन्तवादी युग तक दास-दासियो का निरन्तर शोषण होता रहा है। 'सिंह सेनापति' मे कृष्ण बाबा दास है। वे रोहिणी को बताते है कि कैसे दादा ने उन्हें बनिये से खरीदा और बनिये ने कितना मुनाफा कमाया। लिच्छवी गणो के दासो की तुलना मे अन्य दासो को रखकर वह अन्तर बताता है—"उन्होंने बनिये से पूछा—'इस दास को बेचोगे ?' बनिये ने कहा—'हा ले जाओ।' दादा मालिक ने पूछा—'इसका कितना दाम लोगे ?' बनिये ने कहा—'तीन बीस म मैंने इसे खरीदा था।' 'मालकिन, वह झूठ बोल रहा था, उसने मुझे दो बीस मे खरीदा था। मैं बोलता लेकिन डर रहा था, वह फिर लाल लोहे से दाग देगा। हा, लिच्छवी गण की बात दूसरी है मालकिन ! यहा लोहे से दागना कभी सुना ही नही।"[3] दास वर्ग के शोषण के प्रति लाभ-दृष्टि ने ही वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया। "मार्क्स ने भी पूजीपति-वर्ग और श्रमिक-वर्ग मे चलनेवाले सतत संघर्ष का मूल कारण अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धात को ही माना है।"[4] इसी प्रकार शोषण का उल्लेख करते हुए कृष्ण बाबा कहता है—'हा, दास के काम की मजदूरी मालिक को मिलती है मालकिन !'"[5] 'सुहाग के नूपुर' मे माधवी के कुलाचार भग करने पर नगर के मान, प्रतिष्ठा और

---

१. मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २३३
२. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १८८
३ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १२७
४. आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास—पी० डी० शर्मा
५. सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १६२

व्यवसाय को भारी हानि पहुचती है। सभी विचार करते हैं कि महाराज के राजधानी मे पधारने पर माधवी की दुर्दशा होगी। महाराज उसका सिर मुडवाकर, आधा मुह काला आधा लाल रगवाकर गधे की सवारी पर देश-निकाला देंगे। कोई कहता रूप के हाट के चौराहे पर गड्ढा खुदवाकर माधवी गाडी जायेगी और हिंसक कुत्तो के आगे उसकी बोटी-बोटी नुचवाकर प्राणान्त किया जायेगा।"[१] अत्याचार की इस भीषणता ने ही संघर्ष को जन्म दिया। छाया दिव्या से अपने प्रति अत्याचार का ब्यौरा इस प्रकार देती है—"भद्रे! जानती हैं स्वामिनी अमिता ने किस अपराध मे मुझे कक्ष से बहिष्कार किया? आर्य ने कौतुक से हाथ मेरे अग पर रख दिए। मेरे लजाकर सकुचाने से आर्या कुपित हो गयी। बोली तू छली और कुलटा है। दासी होकर कुल-ललनाओ की भांति लाज का नाट्य करती है।"[२] इसी उपन्यास मे दासी दारा (दिव्या) पुत्र-सहित एक ब्राह्मण को बेच दी जाती है। द्विज-पत्नी द्वारा उसका शोषण होता है जो लोमहर्षक है—"स्वामी की सन्तान के मुख मे अपना स्तन दिए अपने पुत्र को क्षुधार्त देखते रहना उसके लिए असह्य था। चतुर द्विज-पत्नी ऐसी परिस्थिति का उपाय जानती थी। वह दारा के पुत्र शाकुल को उसके सम्मुख लाने की आज्ञा देती। अपने पुत्र की ममता की अनुभूति से दारा के स्तनो मे दूध और नयनो मे जल बह चलता।"[३] दास-दासियों के अपमान ने ही उनके मन मे क्षोभ उत्पन्न किया और विद्रोह की आग धधक उठी। इसी विद्रोह एव विरोध की भावना ने वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया। 'पतन' उपन्यास मे "बदेहसन मुहम्मद-याकूब का आश्रित था। वह लडका था और शायद कुरूप था। आश्रितो का सदा अपमान हुआ करता था। बदेहसन का भी अपमान होता था।"[४] 'वय रक्षाम' मे दानव और असुर राज्यो मे एक नियम यह भी बताया गया है कि कोई भी कुरूप एव दुर्बल पुरुष राजसेवा नही कर सकता था। उसे दास-कर्म करने पडते थे—"कुरूप और दुर्बल व्यक्ति तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते थे। वे चाहे जैसे भी उच्चकुल मे उत्पन्न हुए हों, उन्हे अपने परिवार मे दास-कर्म करने पडते थे तथा निकृष्ट भोजन और वस्त्र मिलते थे।"[५] इस प्रकार अन्य उपन्यासों मे भी दास-दासियो का बहुविधि से हुआ शोषण चित्रित किया गया है। कभी-कभी दास-दासियो का जीवन खतरे से परे नही था। अस्वीकृत दास-दासियो को

१. सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० २०७
२. दिव्या—यशपाल, पृ० ३२
३. वही, पृ० १२६
४. पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १०६
५. वय रक्षाम—आचार्य चतुरसेन, पृ० १७८

तो महारानी, ठकुराणी की जूठन पर जिन्दा रहना पडता था। भाग्य की विडम्बना सदा उनके साथ जुडी रहती थी और यही अवस्था सघर्ष का कारण बनी।

नारी-वर्ग

नारियाँ सदैव से उपेक्षित और शोषित रही हैं। उनको चहारदीवारी में बन्द रखकर पुरुष ने केवल भोग की वस्तु ही माना। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए एक कुट्टनी-वर्ग भी तैयार किया गया लेकिन वह भी उपेक्षित ही रहा। महारानी से लेकर दास दासी तक शोषित-वर्ग की श्रेणी में ही आते हैं। यहा तक कि स्वय नारी ने भी नारी का शोषण किया है—'ऐतिहासिक उपन्यासो मे नारी को कर्त्तव्य-पालन तथा सदाचार की शिक्षा देने के लिए नारी पात्रो मे उन गुणों का समावेश किया गया है जिनको उस काल के लेखक आवश्यक तथा वाछनीय समझते थे।'[1] इन उपन्यासो म नारी का उल्लेख चार रूपों मे हुआ है—(१) वीरागना नारी, (२) लज्जा और प्रेम की मूर्ति नारी, (३) आदर्शमय जीवन व्यतीत करन वाली नारी, (४) कुलटा, कुट्टनी तथा निम्न-वर्ग की नारी। वृन्दावनलाल वर्मा ने रनिवास और ऊचे ऊचे महलों से लेकर गाव की भोली नारियो तथा दास वर्ग की कर्मठ नारियो को अपने उपन्यासो के कलेवर मे सजाया है।

'मृगनयनी' म लाखी का चरित्राकन आदर्श एव वीरागना नारी की दृष्टि से किया गया है—"महाराज, इसका नाम लाखारानी है। कहते हैं इसको लाखी। यह अहीर है। कुमारी है। बडी बहादुर है। इन्ही दोनो लडकियो ने उन दो वैरियो को मार गिराया था और दो को भगा दिया था। यह भी बडा अच्छा निशाना लगाती है।"[2] 'सोमनाथ' उपन्यास का महमूद शोभना के चरित्र का निरूपण इस प्रकार करता है—"मैं खुदा का बन्दा महमूद वही कहूगा जो मुझे कहना चाहिए। यह औरत जो मेरे सामन खडी है, उसने मुझे एक नई बात बताई है, जिसे मैं नही जानता था। इसके हाथ म तलवार नही है, तलवार का डर भी इसे नहीं है। इन्सान के प्यार ने इस मजबूत बनाया है...।"[3] इस वीरता, लज्जा एव आदर्श युक्त होन पर भी नारी वर्ग सदा उपेक्षित व शोषित-वर्ग रहा है। सदैव सघर्षरत रहा है। दासी-वर्ग के स्त्रीत्व की एक झलक 'चीवर' उपन्यास मे उल्लेखित हुई है—"प्रत्येक दासी अपने अविवाहित स्वामी

---

१ हिन्दी उपन्यासो में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ३६१

२. मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १७६

३. सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन, पृ० ३८६-३८७

के सम्मुख ऐसे खडी होती थी जैसे मुझे क्यो नही चुन लेते? मैं भी तो स्त्री हूं।"[1]

"किसी मुसलमान अमीर-गरीब की सुन्दरी कन्या पर बादशाह की नजर पडते ही वह उसे अपनी रखैलिन बना लेने को तैयार हो जाता था।"[2] धन के आधार पर शोषित नारी के स्वरूप का दिग्दर्शन 'पुनर्नवा' उपन्यास में हुआ है, "यहा मिट्टी के गाहक आते हैं। अपना सर्वस्व उलीचकर, पाप खरीदकर लौट जाते है। पुरुषत्व के ये कलक हैं, स्त्रीत्व के अपमानकारी। यहा कामुकता को पुरुषार्थ, भोडेपन को सरसता, मूर्खता को विदग्धता, स्त्रैण भाव को पौरुष माना जाता है।"[3] कहने का तात्पर्य यह है कि समाज मे धन ही प्रबल तत्व है। धनाश्रित होने के कारण ही नारी पुरुष के आश्रित रही है। शोषित एव कुंठित नारी जब स्वतन्त्रता की चाह करती है, तभी सघर्ष की स्थितिया उत्पन्न हो जाती हैं। आज नारी-वर्ग आर्थिक रूप मे स्वतन्त्र होने के लिए पूर्णत सघर्षरत है। राजाओ और ठाकुरो की ड्योढियो मे नारी के सेविका के रूप मे अनेक पदो का उल्लेख मिलता है। राजा एव ठाकुर दोनों ही अपनी सेवा मे उपस्थित दासियो का भरपूर शोषण करते थे। अत कभी-कभी पुरस्कार पाने की लालसा अथवा अर्थ प्रलोभन नारी को वासना-कीचड मे घसीट लेता था। 'जनानी ड्योढी' मे— पातुरें, नर्तकिया तथा गायिकाए कभी-कभी अपने रूप, यौवन और कला के कारण किले मे तूफान मचा देती थी। घाघरावालिया सिर्फ नौकरा-निया थी। डावडिया दहेज मे आयी हुई स्त्रिया होती थी। इनकी कोई प्रतिष्ठा-कोई आदर-भाव नही था। सच तो यह था कि उस वक्त राजस्थान की अनेक रियासतो के किलो की जनानी ड्योढियो मे स्त्रिया जानवरो की तरह नारकीय जीवन जी रही थी।'[4] आज परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था मे इस वर्ग-शोषण से मुक्ति पाने के लिए सर्वाधिक नारी सघर्षरत है। आज की नारी आर्थिक स्वाव-लम्बन प्राप्त कर पुरुष के कधे से कधा मिलाकर अपने पैरो पर खडी हुई वर्ग-सघर्ष को उस श्रेणी तक ले जाने के लिए कृतसकल्प है जहा ऊच-नीच का कोई भेद-भाव न रहे।

देवदासी-वर्ग

'चारुचन्द्रलेख' उपन्यास मे देवदासी-वर्ग की व्याख्या की गई है। "जगन्नाथ-पुरी के मन्दिर मे बहुत सी देवदासिया थी। प्राय किसी मनौती के अनुसार

---

१ चीवर—रांगेय राघव पृ० १३१
२ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १७४
३ पुनर्नवा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३५
४. जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १२

गृहस्थ भक्त अपनी बालिका या युवती कन्याओ को सजा-बनाकर देवता को समर्पित कर जाते थे, ये ही देवदासियां कहलाती थी। इनका काम नाच गान के द्वारा देवता की सेवा करना था। पर धर्म हर समय देवता को लक्ष्य करके ही नही चल पाता। देवता के भक्त भी कभी-कभी लक्ष्य बन जाते हैं।"[1] इन देवदासियो का शोषण देव-भक्तो के द्वारा किया जाता था। 'सुहाग के नूपुर' म देवदासी-वर्ग भी अपने शोषण के प्रति सजग दिखाया गया है। अपने अधिकारो की प्राप्ति के लिए वे शोषण का विरोध करती हैं—"उनका कहना है कि नई देवदासी स्वच्छा से देव सेवा मे अर्पित होने नही आई, इसलिए वह दत्ता वर्ग की देवदासियो मे नही मानी जा सकती, वह उडाई गई है। अत उसकी गणना हृता वर्ग मे की जायेगी। महाजन की लडकी का महादण्डनायक ने लूटा था मन्दिर की एक भृत्या देवदासी ने, मन्दिर के पुजारी प्रधान देवदासी आदि के प्रति बडी निःदाभरी बातें कावेरीपट्टणम् के वातावरण के चारो ओर फैली हुई थी।"[2] वस्तुत यह वर्ग भी अर्थाभाव के कारण धर्म की आड मे सदैव लूटा गया।

सर्वहारा-वर्ग

'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' जनता की शक्ति मे विश्वास रखती थी तथा पिछडे वर्ग का समर्थन करती है—"जनता असली शक्ति है। मुझको विश्वास है कि वह अक्षय है। छत्रपति ने जनता के भरोसे ही इतने बडे दिल्ली सम्राट को ललकारा था, राजाओ के भरोसे नही। मालवे कुण भी किसान थे और अब भी हैं। उनके हलों की मूठ मे स्वराज्य और स्वतन्त्रता की लालसा बधी है।"[3] 'जय यौधेय' मे भी इस वर्ग का समर्थन किया गया है—"प्लातों ने देखा कि यह धन की विषमता, धन के कारण प्रभुता प्रभु होने के कारण और अधिक धन लूटने का अवसर और उनके रास्ते मे बाधा डालनेवाले के सिर पर वज्र। इन सबकी दवा है कि सम्पत्ति म तेरा मेरा न रहे।"[4] सर्वहारा-वर्ग मे किसी वर्ग विशेष का आधिपत्य नही रहता। शोषित वर्गों का यह सगठित वर्ग होता है। इसमे मजदूर, किसान, वेश्या, गोली, दास-दासी, परिचारिका, श्रमिक आदि सभी वर्ग अर्थ के समान वितरण तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने का प्रयास करते हैं। वर्ग-संघर्ष आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने एव पूजीवादी व्यवस्था का भग करने का एक सशक्त साधन है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है

---

१ चारुचन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २७६
२ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० ३३-३४
३ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १२०
४ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १०६

है कि आज इस वर्ग के विचारों का यदि सम्मान न किया गया तो यह संघर्ष वास्तविक जगत का संघर्ष बनकर विद्रोह की आग भड़का देगा—"आज आप इसे केवल भावलोक का विद्रोह कहकर टाल सकते हैं, पर लोक-मानस में शुष्क धर्माचार व रूढ़ मान्यताओं के प्रति यह भावलोक का विद्रोह किसी दिन वास्तविक जगत के विद्रोह का रूप ले सकता है।"[1]

ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष के कारण

ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की उद्भावना के कारण दृष्टिगत होते है। राज्य-लिप्सा, अर्थ-संग्रह, अवैध यौन सम्बन्ध, जातिवाद, ऊंच-नीच की भावना तथा श्रम-शोषण आदि का मुख्यतः उल्लेख किया जा सकता है। वर्ग-संघर्ष के कारण उदय हुई वर्गगत चेतना के प्रमाण भी ऐतिहासिक उपन्यासों में मिलते हैं।

जातिवाद का अभिशाप

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्ट की काव्य-रचनाएं मानव-मात्र को एक सूत्र में बांधने की प्रेरणा देती हैं। इस उपन्यास की प्रमुख पात्री चन्द्रदीधिति (भट्टिनी) भट्ट की वाणी को अबलाओं में आत्मशक्ति का संचार करने की प्रेरणा तथा जातिवाद को वर्ग-संघर्ष की उद्भावना का कारण मानती है—'एक जाति दूसरी जाति को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है।'"[2] "यही 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की मुख्य ध्वनि है जिसकी सार्थकता समकालीन विषमता से सम्बद्ध की गई है।"[3] *'गोली'* उपन्यास में चम्पा (गोली) जातिवाद से आक्रान्त हीन-भावना का प्रतीकात्मक पात्र है—"मैं जन्मजात अभागिन हूं। स्त्री जाति का कलंक हूं। स्त्रियों में अधम हूं परन्तु निर्दोष हूं, निष्पाप हूं। मेरा दुर्भाग्य अपना नहीं है, मेरी जाति का है, जाति-परम्परा का है। हम पैदा ही इसलिए होती हैं कि कलंकित जीवन व्यतीत करें।"[4] *'गढ़कुण्डार'* में हेमवती नागिन की भांति फुफकारकर कहती है—"यदि आप यहां से नहीं जाते है तो मैं यहां से जाती हूं। बुन्देल कन्या न ऐसी भाषा सुन सकती है और न सह सकती है और खंगार राजा होने पर भी बुन्देल कन्या का अपमान करने की शक्ति नहीं

१. पुनर्नवा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १७२
२. बाणभट्ट की आत्मकथा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २७९-२८०
३. हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३६१
४. गोली—आचार्य चतुरसेन, पृ० ६

रखता।"[1] 'शतरज के मोहरे' मे महाराजा को छोटे भाई खूब खरी-खोटी सुनाता है—"तूने जोम मे जाकर गोतघात किया है, अब तू अपने जोम की मिट्टी पलीद होते देख ले।'[2] कारण यह था कि महाराजा ने भाई से हारकर अपनी जान बचाने के लिए वेश्या की शरण ली थी। 'ऊजली' उपन्यास मे जातिवाद को वर्ग-सघर्ष का कारण माना है। प्राचीन गौरव और परम्पराओ की ही दुहाई हम सदैव देते रहे तो नव निर्माण कैसे होगा? यह एक प्रश्न उभरकर सामने आता है—'ऊजली चारणी है। इसलिए वह प्राणदात्री अपना सतीत्व देकर भी अपने पति को प्राप्त नही कर सकती, यह कितना बडा अन्याय और ज्यादती है। मेरा मत है राजमाता और सदस्यगण ऊजली को पटरानी की आज्ञा दें।'[3] इस प्रकार ऊजली को जातिवाद के विरुद्ध वर्ग चेतना का प्रतीक-स्वरूप इस उपन्यास म प्रदान किया गया है। जातिवाद के आधार पर शोषण एव वर्ग सघर्ष की प्रेरणा 'एकदा नैमिपारण्ये' म प्रस्तुत की गई है—' जातिच्युत राक्षस हो जाने के कारण बेचारा धर्मनिष्ठ कल्याणपाद स्वय अपनी पत्नी से अपनी सन्तान उत्पन्न करने का अधिकारी नही रह गया था। पुरोहित वशिष्ठ उनकी रानी से सन्तान उत्पन्न करते है।'[4] 'वन्दिता' उपन्यास मे हिन्दू-मुसलमानो का सघर्ष जाति एव धर्म के आधार पर ही होता है। हिन्दुओ की जातियो म भी छुआछूत तथा भेदभाव का सघर्ष रहता है जो अन्तत वर्ग सघर्ष का कारण बनता है। 'हिन्दू सिपाहियो मे बडी पृथकता थी। ब्राह्मणो का चौका अलग-अलग होता था और राजपूतो का भी उनकी ही भाति पृथक् रहता था। शायद उसी समय 'आठ ब्राह्मण और नौ चूल्हे' की कहावत बनी है।'[5] 'गढकुण्डार' म जातिवाद ही विवाह म सघर्ष का कारण बना। अग्निदत्त की बहन तारा कायस्थ दिवाकर से प्रेम करती है। तारा स्वय ब्राह्मण है। "यद्यपि जातिगत रूढियो के कारण व विवाह-बन्धन म नही बध पाते, पर उनका प्रेम अदम्य है।'[1] 'बाण भट्ट की आत्मकथा' म भट्टिनी वर्ग सघर्ष का कारण जातिवाद को ही मानती है—'एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है। इससे बढकर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है, भट्ट!' यह कहकर जातिवाद का विरोध करती है। भट्टिनी शोषण के विरुद्ध अपनी चेतना को इन शब्दो म अभिव्यक्त करती है—'तुम किसी यवन कन्या से विवाह

१ गढकुण्डार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३४०
२ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० २०२-२०३
३ ऊजली—ललितकुमार आजाद, पृ० १०१-१०२
४ एकदा नैमिपारण्य—अमृतलाल नागर, पृ० ८७
५ वन्दिता—प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ० ३१
६ हिन्दी उपन्यासो में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ३६६

कर लो तो इस देश मे एक भयंकर सामाजिक विरोध माना जायेगा। परन्तु क्या यह सत्य नही कि यवन कन्या भी मनुष्य तथा ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है ?"[1]

सामन्तवादी व्यवस्था

ऐतिहासिक उपन्यासो म हमे ऐसे समाज और व्यक्तियो का चित्रण मिलता है जो आज विलुप्त हो चुके हैं, किन्तु उनके चिह्न दिखाई अवश्य देते हैं। सन् १८५७ की क्रान्ति सामन्तवादी नेतृत्व में, हिन्दू-मुसलमान जनता का अंग्रेजो को देश से बाहर निकालने का असफल विद्रोह था। क्रान्ति का व्यावहारिक पक्ष निश्चय ही गौरव की बात थी क्योकि देश विदेशी सत्ता से स्वतन्त्र होता, लेकिन सैद्धान्तिक दृष्टि से क्रान्तिमूलक उद्देश्य यह था कि देश को पुन विभिन्न सामन्तवादी राज्यो मे विभाजित कर दिया जाये।"[2] इस क्रान्ति के समानान्तर सामन्तवादी व्यवस्था मे हुए शोषण का उल्लेख 'झासी की रानी' उपन्यास मे किया गया है। सामन्तवादी व्यवस्था ही आगे चलकर वर्ग-संघर्ष का कारण बनी। 'वैशाली की नगरवधू' मे बताया गया है कि "साठ प्रतिशत जनसाधारण के तरुण इन सामन्तों और राजाओ के निरर्थक युद्धो मे प्राण देने को विवश किये जाते थे।"[3]

वर्मा जी ने सामन्ती समाज की नब्ज पहचानी है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासो मे सामन्तवादी व्यवस्था से उत्पन्न दासता के शोषण का विविध रूपो मे चित्रण किया है। 'साहित्य कलाए, गाने बजाने, सौन्दर्य सभी सामन्तो के उपभोग की वस्तुए हैं। धर्म के ठेकेदार महन्त, मठाधीश आदि भी सामन्तो के जोड़ के धनी और विलासी होते हैं। सामन्तीय व्यवस्था की सड़ाध मे से त्रस्त जागरूक जनता के विद्रोह का स्वर फूट-फूट पडता है जो रह रहकर सामन्ती व्यवस्था को हिला दिया करता है। सामन्ती परिवारो के कुछ लायक राजाओं को देखकर कहीं-कहीं सामान्य जनता को सामन्ती व्यवस्था के प्रति एक आस्था होने लगती है।"[4] सामन्ती व्यवस्था मे दासो तथा अर्द्ध-दासो के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता था। सामन्तवादी व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख 'सोना और खून' मे भी मिलता है—बादशाह को बारह वर्ष बाद पुत्र प्राप्त हुआ, अत बादशाह ने हुक्म दिया कि "अभी एक करोड रुपये का चबूतरा रूबरू चुना जाए। देखते देखते एक करोड का चबूतरा चुना गया। बादशाह बेगम ने पास

---

१ बाणभट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २७८
२ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन—डा० चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० १३
३ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर, पृ० ३६६
४. वृन्दावनलाल वर्मा—रामदरस मिश्र, पृ० ६६

जाकर देखा और कहा, 'बस एक करोड इतना ही होता है?' उसने एक नाजुक ठोकर चबूतरे पर लगाई और हुक्म दिया लूट लो।"[1] 'वैशाली की नगरवधू' के समान 'सोमनाथ' में शास्त्री जी भी सामन्तों की गृह कलह, विलास-क्रीडा और जनता की गरीबी का चित्रण करते है।[2] 'कचनार' में भी सामन्ती युग की विशेषताओं की विवेचना की गई है—'यह युग सामन्ती था। लडाइयों की भरमार थी।"[3] सामन्ती व्यवस्था में अपराधियों का कठिन दण्ड दिए जाते थे जिन का अर्थ था अपराधियों का मान मर्दन करना तथा दूसरो के सामने विभीषिका का उदाहरण उपस्थित करना। यत्रणागृह कभी-कभी आजीवन चलता था—'उन दिनों यूरोप के प्राय सभी देशो में यत्रणागार बने हुए थे, जहा अभियुक्त को असह्य रोमाचकारी यातनाए दी जाती थी। बहुधा यातनाए अपराध-स्वीकृति के लिए दी जाती थी और क्रूरता इनकी विशेषता थी। इनमे प्रचलित लकडी का कठघरा था, जिसके छिद्र में अपराधी के मस्तक तथा हाथ जकड दिए जाते थे और दूसरी लकडी की एक घरन होती थी जिसमे अपराधी के हाथ-पैर बाध दिए जाते थे। परन्तु एक या दो अगो को तपे लोहे से दागने अथवा अग-भग कर देने से अभिप्राय पूरा हो जाता था।'[4]

अशिक्षा

सामन्ती व्यवस्था में शोषण का भीषण प्रहार चलता रहा और उसका प्रमुख कारण शोषित वर्ग का अशिक्षित होना था। अशिक्षित होने के साथ-साथ उनमे अपने स्वामी के प्रति अन्ध आस्था थी। उनकी प्रवृत्ति एक ही ढाल पर ढलती हुई आदत में परिणित हो चुकी थी। इसी प्रकार राजन्य वर्ग भी बिना सोचे समझे ही मनमाना दण्ड दिया करते थे। कचनार दलीपसिंह को सचेत करते हुए कहती है—"महाराज! आप राजा हैं, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय सब समझते हैं। हम स्त्रिया उनकी बारीकी को नहीं जानती परन्तु जिसने पाप किया है, उसी को दण्ड दिया जायेगा या सबको?"[5] राष्ट्रों में परस्पर युद्धों का कारण भी अशिक्षा से जुड़ा हुआ है। यूरोप में विभिन्न सस्कृतिया प्रचलित थी। इसी कारण यूरोप ग्रीक रोमन सस्कृति का माध्यम पाकर भी कभी एक न हो सका—"विभिन्न राष्ट्रों में बट रहा और वे परस्पर लडते रहे। अनेक

---

१ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १८२
२. आज का हिन्दी साहित्य—प्रकाशचन्द गुप्त, पृ० ६२
३ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २३
४ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १३
५ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ५०

संघर्षों का सामना करते हुए ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों की संतुलन-शक्ति-नीति यूरोप का नेतृत्व करने लगी।"[1] अतः स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष तथा वर्ग-गत संघर्ष को जन्म देने में अशिक्षा का प्रमुख हाथ रहा है। स्त्रियों की अशिक्षा के कारण भी समाज में संघर्ष की स्थितियाँ बनी रही है। अपनी स्वार्थपूर्ति की दृष्टि से विभिन्न जातियों में पुरुष-वर्ग ने स्त्री-वर्ग के लिए अनेक मान्यताओं को स्वीकृत किया। उदाहरणार्थ—'आर्यों में स्त्री केवल भोग्या और दासी है। वह अपने प्रियतम के हृदय की एकछत्र रानी अन्तःपुर की एकमात्र स्वामिनी बनेगी।"[2] अन्ततः वह मात्र भोग्या बनकर रह जाती है। उसकी धारणा केवल-मात्र यही बनकर रह जाती है कि—"धीर, स्त्रधीर, कोमल, पृथुसेन अभद्र मारिश और मातात बुक नारी के लिए सब समान हैं। जो भाग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है, उसके लिए अन्यत्र शरण कहाँ? उसे सब भोगेंगे ही।"[3] किन्तु 'चित्रलेखा' उपन्यास में इस स्थिति से ऊपर उठकर उपन्यासकार ने परि-स्थितियों को समझने का प्रयास किया है—"सुख तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता। पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है और हलचल में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।"[4] यहाँ भाग्यहीन अशिक्षितों पर कुठाराघात कर चेतना का उदय करना ही उपन्यास-कार का लक्ष्य है।

साम्राज्य-लिप्सा

साम्राज्य-लिप्सा भी वर्ग संघर्ष का कारण बनी रही है। 'राणा सांगा' उपन्यास में संग्रामसिंह व पृथ्वीराज में युद्ध राज्य-लिप्सा के कारण ही होता है—"पृथ्वीराज ने तलवार निकाल ली। संग्रामसिंह भी पैंतरा बदलकर तैयार हो गया। वाह री साम्राज्य लिप्सा! भाई भाई के प्राण लेने के लिए एक-दूसरे पर पूरी शक्ति से घातक वार करने लगे।"[5] 'ऊजली' उपन्यास में ऊजली जब जेठवा राजा के पास जाती है तो उनकी माता (जेठवा की) उसे हीरे-मोतियों में तोलना चाहती है। वह कौटुम्बिक मर्यादाओं तथा परम्पराओं में किंचित्मात्र भी परिवर्तन करना नहीं चाहती। वह ऊजली की स्वीकृति रखैल रूप में देती है तथा राजा जेठवा से, उसे जेठवा की ओर पत्र लिखवाकर मिलन नहीं देती। ऊजली कहती है—"विश्वास की भी एक परिधि होती है।

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ६
२ दिव्या—यशपाल, पृ० १४४
३. वही,
४ नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि—प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० १७१
५ राणा सांगा—सत्य शकुन, पृ० ३४

रीजा ने सबको तोड दिया। धर्म और मर्यादा का वास्तविक अर्थ उन्हें आता ही नहीं है। मैं जानती हूँ—उन्हें राज्य-लिप्सा और अतुल विलास विवश किए हुए है, वरना सर्वस्व त्याग करके भी वे अपनी प्राणदात्री के पास आते।"[1] अतः साम्राज्य लिप्सा के कारण ही जेठवा व ऊजली का प्राणान्त हुआ। 'वचन का मूल्य' उपन्यास में दौलत की व्याख्या की है जो लालच का कारण बनती है तथा जिसके कारण वर्ग संघर्ष होता है—"दौलत का लालच सभी की नीयत को डिगा देता है। लालच में फंसकर तो बड़े-बड़े औलिया फकीर भी अपने इरादों और उसूलों से डगमगा जाते हैं।"[2] 'विराटा की पद्मिनी' में भी संघर्ष एवं युद्ध का कारण साम्राज्य-लिप्सा ही बनी रही है। छोटी रानी कहती है—"असल में हम लोग राज्य के अधिकारी हैं। विरानों को अपनी सम्पत्ति भोगते देखकर छाती सुलग उठती है। यही मेरा दोष है, यही मेरा पाप है।"[3] जनार्दन के भाग्य में हमारा अपमान करना ही लिखा है, यह अभी कैसे कहा जा सकता है।

मशीनीकरण

औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण के कारण असंख्य मजदूर बेकार हो गये। वैज्ञानिक खोजों ने एक के बाद एक नये आविष्कार किये, जिनके सहारे पूँजीपति अपने व्यवसायों को उन्नत करते चले गए। अत परस्पर स्वार्थ टकराव के कारण नया संघर्ष उत्पन्न हुआ। पूँजीवादी देशों में लोग पूँजीपति और श्रमिक दो दलों में विभक्त हो गये—"अब मशीनों और विज्ञान के आविष्कार ने यूरोप में जनक्रान्ति उपस्थित कर दी, यूरोप वालों की उत्पादनशक्ति बढ़ गई तो चीजें सस्ते दामों में भारत में आकर बिकने लगीं। अब तक यूरोपियन लोग सोना देकर भारत का माल यूरोप में ले जाते थे। अब वे भारत में अपना माल बेचकर मालामाल होने लगे।"[4] मशीनीकरण के कारण "शिल्पोद्योग में क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। अत कारीगरों की दरें गिर गयी। वे बेकार होने लगे।"[5] मशीन के द्वारा बना माल शीघ्र तैयार होता था तथा सुन्दर भी। हथकरघों द्वारा बना माल बाजार की दृष्टि से उपेक्षित समझा जाने लगा। "हाथ के श्रम पर आधारित छोटे पैमाने के उत्पादन के स्थान पर उसने मशीनों पर आधारित

---

१ ऊजली—ललितकुमार आजाद, पृ० ६५
२ वचन का मूल्य—शत्रुघ्नलाल शुक्ल, पृ० ४४
३ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १२७
४ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २४४
५. वही, पृ० २३६

बड़े पैमाने के उद्योग धन्धों की सृष्टि कर दी। पूंजीवाद इन्हीं मशीनों की वजह से सारी दुनिया में फैल गया है। मशीनें काम के दिन के उस भाग को घटा देती हैं जिसमें मजदूर स्वयं अपने लिए कार्य करता है और काम के दिन के उस भाग को बढ़ा देती हैं जिसमें वह पूंजीपतियों के लिए अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है।"[1] मशीनों की सहायता से पूंजीपति मजदूरों का शोषण करते हैं और बढ़ते हुए अपने शोषण के खिलाफ प्रतिरोध तोड़ने की कोशिश करते हैं—"श्रम की उत्पादकता बढ़ाकर मशीनें समाज की धन-सम्पदा में तो वृद्धि करती हैं किन्तु पूंजीवादी समाज में श्रम की उन्नतर उत्पादकता के समस्त फलों को पूंजीपति हड़प लेते हैं।"[2] अतः मजदूर-वर्ग गरीब का गरीब बना रहता है। उसकी जिन्दगी छोटी हो जाती है। अतः अधिक श्रम तथा कम लाभ को देखकर यह वर्ग पूंजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ देता है।

अभिशप्त व्यवस्था

'वैशाली की नगरवधू' में अभिशप्त वर्ण व्यवस्था का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वर्ण व्यवस्था सदैव वर्गगत संघर्ष का कारण बनी रही है। इस उपन्यास में वर्णव्यवस्था में क्षत्रियों का स्थान ब्राह्मणों से ऊपर हो गया था, इसी तथ्य की विवेचना की गई है—'क्षत्रिय राजा तथा ब्राह्मण महामात्य होते थे। किन्तु दोनों के विचारों में वैभिन्य था। दोनों में काली द्वेष और स्पर्धा फैली हुई थी। ब्राह्मणों के तिरस्कार का कोई भी अवसर मिलने पर क्षत्रिय उसे छोड़ते नहीं थे। उधर ब्राह्मणों को नीचा दिखलाने के लिए बौद्ध, जैन एवं श्रमण आदि भी निरन्तर प्रयत्नशील थे। ब्राह्मण अन्दर-ही-अन्दर षड्यन्त्र किया करते थे तथा अछूतों का अपमान करते थे।"[3] ......अरे काणे चाण्डाल, तू हम ब्राह्मणों के सम्मुख वेदपाठी ब्राह्मणों की निन्दा करता है? याद रख हमारा बचा हुआ अन्न भले ही सड़ जावे और फेंकना पड़े, पर तुझ निगड चाण्डाल को एक कण भी नहीं मिल सकता।"[4] 'दिव्या' उपन्यास में वर्ण-व्यवस्था का प्रबल रूप दिखाया गया है—"वर्णीय भेदभाव इतना उग्र रूप धारण करता आ रहा था कि न्याय से ही सारी समस्या का हल सम्भव न था।"[5] दिव्या ने पृथुसेन के युद्ध में जाते समय बिना विवाह के स्वाभाविक आकर्षण के कारण गर्भ

---

१ मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त—एल० लियोन्तीव, पृ० ८८
२ वही, पृ० ९०
३ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर, पृ० २६८
४ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० ५५४
५ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० १७२

धारण कर लिया था। पृथुसेन की उपेक्षा के कारण वह कंकरीली राहों में भटकी फिरी। जब मल्लिका ने उसे अपनी उत्तराधिकारिणी बनाना चाहा तो अभिजात वंश ने उसे स्वीकृत नहीं किया। 'जय वासुदेव' उपन्यास में भी वर्णाश्रम धर्म और बौद्धधर्म की टकराहट चित्रित की गई है। नारी की स्थिति उस समय अत्यन्त शोचनीय हो गई थी।"[1] दिव्या द्विजकन्या है अतः उसे प्रव्रज्या लेने का हक भी नहीं मिलता है न ही वेश्या बनने का—"मद्र में द्विजकन्या वेश्या के आसन पर बैठकर जन के लिए भोग्य बनकर वर्णाश्रम को अपमानित नहीं कर सकती।"[2]

'मृगनयनी' उपन्यास में वर्णाश्रम-व्यवस्था में अनास्था प्रदर्शित की गई है। महाराज आर्यावर्त कहते हैं— शास्त्री साचो, इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओं की कितनी रक्षा कर सका है। रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनों अनिवार्य हैं। जाति पाँति ढाल का काम तो कर सकी है किन्तु तलवार का काम कभी न कर पायेगी।"[3] 'वैशाली की नगरवधू' में गौतम वर्णन करते हैं कि उस समय आर्यों के तीन वर्ण थे—एक ब्राह्मण-पुरोहित, दूसरा क्षत्रिय तथा तीसरा जनपद अर्थात् विश। सेवा का कार्य क्रीतदासों के सुपुर्द रहता था। परन्तु जैसे जैसे ही जनसंख्या के साथ साथ आर्थिक लालसा बढ़ी, वैसे ही वैसे ऊँच-नीच की भावना तथा आर्थिक संकट बढ़ा। इसी स्थिति से ही शोषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और वर्ण-व्यवस्था का स्थान अनेक जाति-व्यवस्थाओं ने ले लिया। इस व्यवस्था ने विद्रोह को वर्गगत-संघर्ष का रूप दे दिया। 'माधवजी सिंधिया' उपन्यास में वर्ण-व्यवस्था के अभिशप्त होने का कारण मराठों की जागीर प्राप्त करने की धुन, राजपूतों का अहंकार एवं ब्राह्मणों की कूटनीति को माना गया है। 'गढ़कुण्डार' में "अग्निदत्त ब्राह्मण हैं तथा नागदेव क्षत्रिय। दोनों में भाईचारा है। मानवती भी अग्निदत्त के प्रति आकर्षित है किन्तु वर्णाश्रम का बन्धन आगे आ जाता है।"[4] प्रारम्भ में वर्ण का अर्थ ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि से ही लगाया जाता था। सम्पत्ति के अधिकार के भाव ने वर्णों की विलगता को दर्शाना प्रारम्भ किया—'मैं यह मर्यादा स्थापित करता हूँ कि अपने ही वर्ण की स्त्री की सन्तान पिता के वर्ण को प्राप्त हो, वही सम्पत्ति में भागी हो।"[5] अतः साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त करने की लालसा

---

१ हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० १४१
२ दिव्या—यशपाल, पृ० २२१
३ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३७१
४. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ३६२
५ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ० २६१

एव मान्यताओ ने वर्ण-व्यवस्था को भग किया तथा सघर्ष की भूमिका खडी कर दी।

आर्थिक विषमता

आर्थिक विषमता प्रत्येक काल में वर्णो के मध्य सघर्ष का कारण बनकर उभरी है। 'वैशाली की नगरवधू' मे यह विषमता अति तीव्रतर रूप मे दिखाई गई है। उपन्यासकार के शब्दो मे—"साधारण जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। भूखी-नगी जनता अत्याचार सहन करती हुई जीवन-यापन कर रही थी। राजाओं और विशेषकर धन-कुबेरो के यहा धन सिमिटकर एकत्र हो गया था।"[1] बलभद्र (सोमप्रभा) द्वारा अम्बपाली के प्रासाद को लूटनेवाली घटना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस काल की साधारण जनता को अन्न प्राप्त न था और सामन्तो के यहा आवश्यकता से अधिक भरा हुआ था।[2] 'सिंह सेनापति' में कृष्ण रोहिणी को आर्थिक विषमता के कारण सहे गये अत्याचारो का वर्णन करते हुए कहते है—"घर मे कोई न था और वह न जाने किसके लिए धन जमा कर रहा था। एक दिन मैं पानी भरने गया, घडा का मेखला फन्दे मे रह गया और निचला भाग कुए मे डूब गया। बस यही कसूर था। मैं छटपटाता रहा और उस पिशाच ने मुझे बाध दिया। दाग देने पर भी उसे सतोष नही हुआ।"[3] "सयाना होते ही मगध के इस बनिये ने मुझे खरीद लिया। मार तो सभी जगह खानी पडती थी किन्तु यह बनिया बिल्कुल राक्षस था।"[4] 'विस्मृत यात्री' उपन्यास के मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण करते हुए दु ख का मूल कारण आर्थिक विषमता को बताया गया है—"वह निरन्तर अपने विचारो को मार्क्सवाद की शब्दावली मे व्यक्त करते है। अभाव के कारण दु ख की जड को मै अकेला नही काट सकता और समाज में *आर्थिक विषमता ही दु ख का मूल कारण है।*"[5] "आर्थिक आधार पर उद्भूत भेदो को मिटाकर मानव-जाति को दु ख-सागर से उबारा जा सकता है। वह अनुभव करने लगता है कि शोषक अल्पसख्यक है और शोषित बहुसख्यक।"[6] आर्थिक विषमता वास्तव मे वर्गगत सघर्ष का एक उत्प्रेरक घटक है। राजतत्रात्मक

---

१. वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० २६८
२ वही पृ० २६६ तथा ६१२-६१३
३ सिंह सेनापति—राहुल साकृत्यायन, पृ० १५७
४ वही, पृ० १५६
५. विस्मृत यात्री—राहुल साकृत्यायन, पृ० ३७२
६. वही, पृ० ३७३-३७४

समाज-विधान ही आर्थिक विषमता का पोषक था जिसका गणतन्त्रात्मक व्यवस्था मे विरोध हुआ।

परतन्त्रता

भारत की परतन्त्रता का एक प्रधान कारण हिन्दू राजाओ की पारस्परिक कलह तथा जातीय अभिमान की भावना थी। वर्मा जी के 'गढकुण्डार' मे इन राजाओ के मिथ्याभिमान को चित्रित किया गया है। नाग अपने-आपको तथा अपनी जाति को बहुत ऊंचा समझता है। 'झांसी की रानी' मे अंग्रेजी राज्य से स्वराज्य-स्थापन करने की प्रेरणा परतन्त्रता से मुक्ति पाने की ही प्रेरणा है। परतन्त्रता सदैव से शोषण का कारण बनी रही है। मनुबाई का लक्ष्य स्वतन्त्रता-प्राप्ति था। उन्होंने अपनी सखियो से कहा था—"यदि हिन्दुस्तान मे कोई भी इस पवित्र काम को अपने हाथ मे न ले, तो भी मैंने अपने कृष्ण के सामने, अपनी आत्मा के भीतर उसका बीडा उठाया है।"[1] शास्त्रीजी ने अपने उपन्यास 'सोमनाथ' का कलेवर परतन्त्रता के परिणामस्वरूप होनेवाले नरसहार, लूटमार आदि से चुना है। उसमे भारतवासियो को पददलित करनेवाली रूढियो, मान्यताओ के विरुद्ध मुक्ति की आवाज उठाई गई है। इसी आवाज ने वर्गगत सघर्ष की प्रेरणा भी दी है। लेखक का ध्यान हिन्दुओं की रूढिवादिता की ओर भी है क्योकि रूढिवादिता तथा अधविश्वासो के कारण ही हिन्दू जाति सदैव परतन्त्र रही है। 'दिव्या' उपन्यास मे दारा अपने शाकुल के लिए शरण ढूढने की आशा से पुरोहित के घर से भाग निकलती है क्योकि अब वह और उसका शाकुल दोनो ही अशरण थे, किन्तु—"परतन्त्र होने के कारण उसके लिए कही शरण और स्थान नही, दासी होकर वह परतन्त्र हो गई।"[2] नारी-वर्ग तो सदैव परतन्त्रता की बेडियो मे जकडा रहा है—"दारा का मस्तिष्क भी झुझला उठा—वह स्वतन्त्र थी कब? अपनी सतान को पा सकने के लिए उसने दासत्व स्वीकार किया।"[3] किन्तु उसे अनेक व्यक्तियो की परतन्त्रता स्वीकारनी पडी। परतन्त्रता के कारण ही एक शासक ने अन्य शासक की आधीनता स्वीकार की—नारी ने पुरुष की तथा व्यक्ति ने समाज की। परन्तु आर्थिक समानता के विचार ने वर्ग-सघर्ष की प्रेरणा प्रदान की और शोषण से मुक्ति प्राप्त कराने का एक श्रेष्ठतम साधन बना।

---

१. झांसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३६३
२. दिव्या—यशपाल, पृ० १३३
३. वही, पृ० १३४

मार्क्सवादी चेतना का उदय

ऐतिहासिक उपन्यासों में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रांगेय राघव प्रभृति उपन्यासकारों ने अपनी दृष्टि से मार्क्सवादी चेतना का चित्रण कर शोषण के अनेक पहलुओं को उजागर किया है। आलोच्य उपन्यासकारों ने चित्रित पात्रों द्वारा इस विचारधारा के प्रसार-प्रचार तथा वर्गगत चेतना के उदय का रूपांकन किया गया है। मार्क्सवादी चेतना के उदय के कारण ही शोषित-वर्ग में विद्रोह बढ़ता है। श्री रांगेय राघव ने 'मुर्दों का टीला' उपन्यास में मिश्र और एलाम सुमेरु और मोहन-जो दड़ो के दार्शनिक तत्व की झलक देकर गणराज्य की गतिविधि का विश्लेषण मार्क्सवादी दृष्टि से किया है।"[1] 'दिव्या' उपन्यास में यशपाल ने पतनोन्मुख जीवन को दृष्टि के मध्य रखकर मार्क्सवादी व्याख्या की है। रांगेय राघव अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"न स्त्री बुरी होती है न पुरुष। धन बुरी वस्तु है। धन और अधिकार को ठीक कर दो, फिर संसार में कुछ बुरा नहीं है।"[2] मणिबन्ध के ये विचार मार्क्सवाद के समर्थक हैं—"मैं इस अपार धन से घृणा करने लगा हूं। यह सोना मेरी आंखों में आग की भांति लपटों में जलाता है। इसकी भयानक प्यास को मैं कभी नहीं बुझा सका। पहले यह मेरी सम्पत्ति था, आज मैं इसकी सम्पत्ति हो गया हूं। यह मुझे खा जाना चाहता है।"[3] 'मधुर स्वप्न' में तेरा-मेरा के भाव हटाकर धन-सम्पत्ति को सारे समुदाय की वस्तु बताया गया है—"हम स्त्री को सम्पत्ति नहीं मानते।"[4] मज्दक के इस विचार से लोग समझते हैं कि वह विवाह-प्रथा हटाकर पुरुषों के लिए उसे मुक्त करना चाहते हैं किन्तु मित्र वर्मा के शब्दों द्वारा स्पष्ट हो गया—"सभी के लिए नहीं, किन्तु स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में आज जो धारणा है हम उसमें अवश्य परिवर्तन करना चाहते हैं।"[5]

इस प्रकार शोषित-वर्ग की मुक्ति का प्रयास ही उस वर्ग में नवचेतना का उदय करता है। शोषित-वर्ग चैतन्य होकर वर्गगत संघर्ष के लिए तैयार होता है। 'सिंह सेनापति' में परिश्रम पर बल देकर साम्यवादी विचारों का प्रसार किया गया है—" 'तक्षशिला' में भिखारियों का अभाव है, प्रत्येक समर्थ व्यक्ति

---

१. हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३८५
२ मुर्दों का टीला—डा० रांगेय राघव, पृ० ३५१
३ वही, पृ० ३०७
४. मधुर स्वप्न—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २०
५. वही, पृ० ५१

जीविका के लिए परिश्रम करता है, दास-प्रथा निषिद्ध है।"[1] उत्तर कुरु के गणतन्त्र मे लोगो का सब-कुछ सम्मिलित दिखाया गया है—"उनका प्रधान धन पशु है जिसमे सभी का सम्मिलित श्रम और भोगने का समान अधिकार है।"[2] इसी भांति राहुल जी ने भी यही बताने का प्रयत्न किया कि मानव-दुःख का मूल कारण आर्थिक भेद-भाव ही है। उसी के आधार पर शोषण के मूल मे वर्गवाद कायम रहता है। 'दिव्या' मे मारिश का विश्वास है कि—"तू स्वामी के भोग के अधिकार को स्वीकार करता है, यह तेरी दासता है।"[3] 'ठकुराणी' उपन्यास मे कहा गया है कि—"कल ठाकुर के कारिन्दो ने एक किसान मुरली को पकड़कर इस बे-रहमी से पीटा कि उसकी मौत हो गयी। शिव और दूसरे किसानो ने इस जोर-जुल्म के विरुद्ध नारे लगाए और ठाकुर को न्याय करान की चुनौती दी।"[4] इसी प्रकार शोषण के विरुद्ध वर्गगत चेतनायुक्त सघर्ष अन्य ऐतिहासिक उपन्यासो मे भी मिलता है किन्तु डॉ० रागेय राघव, यशपाल, राहुल साकृत्यायन निम्न-वर्ग के शोषण को चित्रित करते हुए वर्ग-सघर्ष की सम्पूर्ण व्याख्या करते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों मे वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रियाएं

शोषण की प्रत्येक प्रक्रिया के पीछे कोई न कोई भावना निर्मित रहती है। आज जनमानस इस भावना की समाप्ति के लिए आक्रामक प्रहार के लिए तत्पर है तो नव-चेतना से युक्त उपन्यासो मे भी इस मनोवृत्ति को किसी न किसी रूप में उजागर किया गया है। वह चित्रण वर्ग-सघर्ष की प्रक्रियाओ के रूप मे उभरा है। ब्लादीमीर के शब्दो मे—"हम विश्व-पूजीपति-वर्ग के विरुद्ध सघर्ष के ऐसे ऐतिहासिक काल म रह रहे हैं जबकि वह हमसे बहुत शक्तिशाली है। सघर्ष के इस दौर मे हमे क्रान्ति के विकास की रक्षा करना है और पूजीपति-वर्ग का मुकाबला करना है।"[5] प्रत्येक युग मे दो परस्पर-विरोधी वर्ग रहे हैं और उनके पारस्परिक सघर्ष से ही उस युग के इतिहास का निर्माण हुआ है। सबसे अन्त मे पूजीपति और निम्न मजदूर-वर्ग मे सघर्ष उपस्थित हो जाता है।"[6] पूजीवाद समाज कैसे सगठित हुआ, मार्क्स इसकी खोज करता हुआ कहता है—"शोषण के विरुद्ध चेतना जाग्रत होने पर श्रमिक द्वारा शोषक पूजीपतियो के

---

१. सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३४
२. वही, पृ० ६५-६६
३ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रो० प्रवीण नायर, पृ० ११६
४ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १५
५. सस्कृति और सास्कृतिक क्रांति—लेनिन ब्लादीमीर, पृ० १२८
६ हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी—नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ४६८

विरुद्ध विद्रोह होते है और उनके विनाश के निरन्तर प्रयत्न किये जाते हैं।"[१] इस विलियन से सर्वहारा-वर्ग मे एका कायम करने और क्रान्तिकारी शक्तियो को बढाने मे सहायता मिली।"[२] "समाजवादी समाज मे लोग न केवल आर्थिक नियमो की जानकारी रखते हैं बल्कि उन्हे अपने काम का भी आधार बताते हैं।"[३]

ऐतिहासिक उपन्यासो का कथ्य स्वरूप इसी आर्थिक आधार पर टिका हुआ है। अर्थ के आधार पर ही विभिन्न विकृतिया उभरकर सामने आती है। अत "समाज के भीतर वर्ग और वर्ग का सघर्ष, फिर वर्ग के भीतर कुल और कुल का, कुल मे परिवार और परिवार या अन्ततोगत्वा परिवार के भीतर व्यक्ति और व्यक्ति का सघर्ष क्रमश इन सब पर टिककर उपन्यासकार की दृष्टि विकसित होती रही।"[४] मार्क्सवादी चेतना द्वारा व्याप्त सर्वहारा-वर्ग के चैतन्य स्वरूप ने समाज की, परिवार की, व्यक्ति की अनेक समस्याओ के कलुषित स्वरूप को उभारकर सामने रखा। उनसे मुक्ति दिलाने की चेष्टा की। ऐतिहासिक उपन्यासो मे निरूपित वर्ग-सघर्ष की प्रतिक्रियाओ का विवेचन निम्नाकित शीर्षको के अन्तर्गत किया जा सकता है—

नारी-शोषण

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो मे राजकुल की नारियो मे सामन्तीय दोष पर्याप्त मात्रा मे दृष्टिगत होते हैं। नारियो की सामन्तीय वृत्ति उनके शोषण का कारण बनी रही है। 'दिव्या' उपन्यास मे नारी के शोषण की व्याख्या करते हुए यशपाल ने लिखा है—"नारी प्रकृति के विधान से नहीं, समाज के विधान से भोग्य है। प्रकृति मे और समाज मे भी पुरुष और स्त्री अन्योन्याश्रित है। पुरुष का प्रश्रय पाने से ही नारी परवश है परन्तु नारी के जीवन की सार्थकता के लिए पुरुष का आश्रय आवश्यक है और पुरुष नारी का आश्रय भी है।"[५] इस प्रश्रय की धारणा ने ही नारी के शोषण की विवशताए उजागर कर दी। अन्त नारी अपनी इस विवशता के प्रति सचेत भी हुई। 'दिव्या' उपन्यास मे सीरो अपने पति से कहती है—"मैं तुम्हारी क्रीतिदास नहीं हू। तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारी आश्रिता नहीं हू। मै तुम्हारे पिंजरे मे बद्ध सारिका नहीं हू।"[६]

१ A History of Political Thought—Dr P D Sharma, P, 425 (From Benthan to the Present day)
२ सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास—पृ० ७७
३ समाज को आर्थिक व्यवस्था—एल० लियोन्तीव, पृ० १४६
४ कल्पना जुन १९५४—सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का लेख, पृ० ४२३
५ दिव्या—यशपाल पृ० १३६
६ वही, पृ० १७६

नारी की हीन अवस्था से दुःखी होकर 'वैशाली की नगरवधू' की राजमहिषी कहती है—"यहा कोशल, मगध और अग, वग, कलिंग मे तो कही भी ऐसा नही पाओगी। यहा स्त्री न नागरिक है और न मनुष्य। वह पुरुष की क्रीत सम्पत्ति और उसके विलास की सामग्री है। पुरुष का उसके शरीर और आत्मा पर असाध्य अधिकार है।"[1] 'जय यौधेय' मे नारी की विपन्न अवस्था का चित्रण किया गया है—"नारी के प्रति राजन्य वर्ग का व्यवहार अत्यन्त कामुक और अनैतिक था।"[2] नारी को प्रतिवाद तक का अधिकार न था। नारी की शोषित अवस्था को देखकर जय कहता है—' आज की नारी जो कुछ है उसको बनाने मे पुरुष का हाथ है। नारी के लिए कोई और नहीं यही पुरुष विधाता है।"[3] 'गोली' उपन्यास मे महाराजाधिराज का विवाह कुवरी ठाकुर की बेटी से होता है। चम्पा कुवरी के विवाह मे प्रदान की गई एक गोली है। महाराजाधिराज विवाह की प्रथम रात्रि मे ही अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोडकर विवाह मे मिली गोली चम्पा के कक्ष मे चले जाते हैं। चम्पा का महाराजाधिराज से इक्कीस वर्षों तक सम्बन्ध रहा। "जब प्रथम बार उसे महाराजाधिराज से गर्भ रहा तो उसका विवाह किसनु नामक गोले से कर दिया गया था। वह नाममात्र का पति था। वस्तुत महाराज के औरस से उत्पन्न बच्चो का पिता कहलाने के लिए ही चम्पा का विवाह किसनु से किया गया था।"[4]

'ऊजली' उपन्यास की ऊजली जब राजा जेठवा से प्रताडित होती है तो कहती है—"ओ पापी! तुमने एक अक्षत कुवारी के सतीत्व से अपने मरणासन्न प्राण मे जीवन सचरण किया, उसकी देह की उष्मा ली, उसकी आत्मा का प्रकाश लिया, उस पवित्र नारी से कपट करके तुम भी सुख न पा सकोगे। मैं कहती हूँ तेरे सम्पन्न राज्य का और तेरा विनाश हो जायेगा।'"[5] इस प्रकार ऊजली नारी-वर्ग के विद्रोह का प्रतीक है। 'कचनार' नारी-वर्ग की चेतना का उपन्यास है। कचनार दलीपसिंह से कहती है—"मेरे साथ भावर डालिए। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिए। मुझे अपनी जीवन सहचरी बनाइये। वचन दीजिए। मैं आपके चरणो मे मस्तक रख दूगी। परन्तु मैं ऐसा अगरखा नही बन सकती जो जब चाहा उतार फेंका।"[6] ब्राह्मण भी धर्म की आड में

---

१ वैशाली की नगरवधू—चतुरसेन शास्त्री, पृ० २६६
२. हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४०४
३ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २२८
४ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य—डा० शुभकार कपूर, पृ० २००
५. ऊजली—ललितकुमार आजाद, पृ० ११८
६ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १२३

नारी का शोषण करते थे और उसे स्वयं उपलब्धि का साधन बनाते थे— ब्राह्मण स्वयं भी स्वार्थी एवं पदलोलुप हो चुके थे। वे पाखण्ड करके दल और दमिण में सुन्दर दासियों को ले जाते थे और उनके रत्नाभरण उतारकर पाव-भाव निपट में बूढ़ों को बेच देते थे।'[1] 'कचनार' उपन्यास में नायिका दासियों के शोषण का विवेचन महाराज के सामने रखती है—"महाराज हम दासियों के मां-बाप या हमारे नातेदार जब राजकुमारियों के साथ हम लोगों को लगा देते हैं तब भाड़ में तो हम यों ही फेंक दी जाती हैं। जब राजा लोग दासियों की देह का सर्वनाश कर चुकते हैं, तब मानो उनकी राख घूरे पर फेंक दी जाती है।"[2] इस तरह शोषित नारी नाना वर्गों से शोषित होकर भी मुक्त नहीं हो पाती तथा विवश होकर उन्हीं परिस्थितियों से समझौता कर लेती है। 'दिव्या' उपन्यास में दिव्या परिस्थितियों में समा जाने का प्रयत्न करती है किन्तु शाकुल के प्रति अन्याय न सह सकने के कारण वह ब्राह्मण के घर से भाग निकली और बौद्ध विहार में शरण पाने की चेष्टा करती है किन्तु स्थविर वहां भी उसे शरण नहीं देते—" 'यदि पति और पिता नहीं हैं तो क्या तुम्हारे पुत्र की अनुमति तेरी धर्म ग्रहण करने की है ? देवी, धर्म के नियमानुसार स्त्री के अभिभावक की अनुमति के बिना संघ स्त्री को शरण नहीं दे सकता।' 'परन्तु देव भगवान तथागत ने तो वेश्या अम्बपाली को भी संघ में शरण दी थी?' 'वेश्या स्वतन्त्र नारी है देवी!' उत्तर दे स्थविर उठ गए।'[3] शोषण के कुचक्र से आक्रान्त दिव्या वेश्या बनने का विचार करती है। नारी की दीन-हीन अवस्था पर दुःखित होकर श्रावस्ती की राजमहिषी गान्धार देश की स्वतन्त्र कन्या कलिंगसेना का बूढ़े प्रसेनजीत से विवाह होता देखकर प्रथम तो मूक हो जाती है किन्तु कलिंगसेना यह अत्याचार मौन होकर नहीं सह पाती। वह विद्रोह करती है— 'परन्तु मैं देवी नन्दिनी यह कदापि न होने दूंगी। मैंने आत्मबलि अवश्य दी है पर स्त्रियों के अधिकार नहीं त्यागे हैं। मैं नहीं भूल सकती कि मैं भी एक जीवित प्राणी हूं, मनुष्य हूं, समाज का अंग हूं।'[4] इस प्रकार कलिंग-सेना का वक्तव्य नारी चेतना का प्रतीक है। नारी जीवन की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लिखते हैं—'स्त्री प्रकृति है, उसकी सफलता पुरुष को बांधने में है, किन्तु सार्थकता पुरुष

कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० १०८
दिव्या—यशपाल पृ० १२४
वही पृ० १ ५
वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन पृ० २६८

की मुक्ति में है।'[1] अतः पुरुष के बन्धन में आश्रित होकर नारी-वर्ग की विवशताएं और बढ़ जाती हैं। शोषण का स्तर और तीव्रतर हो उठता है। फलतः पुरुष के विरोध में नारी को अपना विद्रोही झण्डा फहराना पड़ता है। संघर्ष ही ऐसी सीढ़ी है जिससे शोषित वर्ग के शोषण का अन्त हो सकता है।

यौन विकृतियां

वर्ग संघर्ष की प्रतिक्रियाओं में यौन विकृतियां भी कारण है। पैसे की कमी के कारण निम्न वर्ग, उच्च वर्ग की यौन विकृति का शिकार बनता है। धन की अधिकता राजन्य-वर्ग, ठाकुर-वर्ग, जमींदार-वर्ग तथा ब्राह्मण-वर्ग में सुरा और सुन्दरी के प्रति लिप्सा पैदा कर देती है। सुरापान के पश्चात् उन्मादावस्था में उच्च वर्ग के लोग यौन विकृतियों के शिकार होते हैं। उन्हें नारी के नारीत्व से लगाव नहीं वरन् उन्हें नित-नयी नव-यौवना से आलिंगनबद्ध हो अपनी यौन-तृप्ति का ध्यान रहता है। साथ ही उनका हृदय इतना कठोर हो जाता है कि अपने आनन्द में तनिक भी विघ्न पड़ने पर वे समर्पिता को क्रूर दण्ड देने से नहीं चूकते। यौन विकृतियों की अनेक अवस्थाएं होती हैं यथा—स्वपीडन, परपीडन, प्रदर्शन-प्रवृत्ति, समलिंगी कामुकता, वस्तु प्रेम आदि। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इन यौन विकृतियों का विशद चित्रण हुआ है।

यशपाल ने 'दिव्या' में अभिजात्य कुल के लोगों द्वारा इतर जाति की स्त्रियों से सम्भोग को एक परम्परा के रूप में चित्रित किया है। यौन स्वच्छंदता का प्रमाण इतिहास में भले ही मिल जाय—"किन्तु पति के सामने पत्नी और भाई के सामने बहन का हाथ पकड़नेवाले की गर्दन पर रक्तरंजित खड्ग होता था।"[2] भारतीय परम्परा में कभी ऐसी छूट रही होगी यह एक संदिग्ध प्रश्न है। यौन विकृतियों पर आधारित ऐय्याशी का जीवन सड़कों और शाही दरबारों में ही नहीं वरन् शाही नौकरों के घर में भी आबाद होने लगा—"शाही नौकर दिन छुपे पान कर लेते हैं और तवायफों को बुलाकर रातभर रासलीला करते हैं। वहां सभी वह होता है जो पूर्व होता था। वहां अबलाओं, कमसिन लड़कियों का सतीत्व भी भंग किया जा रहा है।"[3] पुरुष द्वारा असामान्य रूप से कामवासना की तृप्ति करना यौन विकृति का एक रूप है। 'जनानी ड्योढ़ी' में राजाजी की यौन विकृति का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—"जब मैं राजाजी के महल में पहुंची, वे सुरा की मादकता में मदहोश थे। वे भावनाहीन अस्फुट

---

१ बाणभट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १११
२ हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा—डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० १५२
३ राणा सांगा—सत्य अर्जुन, पृ० ६२

स्वर म बोले—"इसे तैयार कर दो। खूब इत्र लगाना। जल्दी से चली जाओ। वे दोनों निर्ममतापूर्वक मेरे कपड़े खोलने लगीं। अब मेरे जिस्म पर काचली नहीं। राजाजी ने कहा शर्म आती है तो इस दारू के दो-चार घूटके लेले।... फिर गोली बन जावेगी।"[1] समलिंग यौन विकृति व अत्याचार का एक उदाहरण और प्रस्तुत है जो ठकुराणी के लिए असह्य व्यवहार था—"एक दिन गोरी ने एक नाटक रचा। ठकुराणी को अपने महल में बुलाया और उसे अपने पलंग के नीचे सोने को कहा। मना करने पर उसे पलंग के नीचे घसीटकर ढकेल दिया। उसने महल के किवाड़ बन्द किये और बगल बच्चे को लेकर पलंग पर सो गयी, केलिक्रीड़ा में लीन हो गयी।"[2] 'विराटा की पद्मिनी' म राजा नायकसिंह बहुत कामुक थे। बुढ़ापे में कामुकता और बढ गयी और दिमाग में खलल आ गया। सनक बढ गई।[3] उनकी अति कामुकता के कारण ही जनजीवन में शोषण बढ़ता गया। आचार्यपुत्र सिंह 'सिंह सेनापति' में रोहिणी को वस्त्राभूषण से सुसज्जित देख उसे चुम्बन के लिए आग्रह करता है—"चुम्बन चाहे जितने चाहो उतने, किन्तु आलिंगन अभी नहीं, मा के हाथ की सजावट बिगड़ जायेगी। मुझे महोत्सव में चलना है।"[4] असमय सुन्दर नारी को देखकर उत्तेजित होना यौन विकृति का ही परिचायक है। इस यौन विकृति के कारण ही राजा-महाराजा एवं ठाकुर अपने दास-दासियों पर असह्य अत्याचार करते थे। 'सुहाग के नूपुर' म यौन विकृति के परिणामों का उल्लेख हुआ है—"विलास की लहर ने अनेक अतृप्त एवं कुंठित कुल-कामिनियों में गुप्त व्यभिचार की लहर दौड़ा दी थी।"[5] गुप्त व्यभिचार के द्वारा अनेक गुप्त रोगों से पीड़ित नारी-वर्ग का जीवन दुर्वह हो गया था। 'दिव्या' में पृथुसेन से वंचित दिव्या का गर्भ यौन विकृति का परिचायक बन जाता है। परिणामस्वरूप दिव्या को अनेक संघर्षों से गुजरना पड़ता है। 'मुर्दों का टीला' उपन्यास में आमेनरा के जीवन में—"यौवन की मादकता कितने अंशों म उसके पथ का प्रलोभन कर चुकी है, यह उसके लिए स्मरण रखने की बात नहीं।"[6]

अर्थाभाव के कारण भूखी मरती नारी जब अपने बच्चों को भूखा देखती है तो वह अस्मत फरोशी के लिए तैयार हो जाती है। अर्थाभाव ही उसकी यौन विकृति का कारण बनता है। 'ठकुराणी' म नैना ने देखा उसका बेटा भी दो

१ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १८-१९
२ वही, पृ० ८४-८५
३ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ८
४ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ७९
५ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० १७८
६ मुर्दों का टीला—रांगेय राघव, पृ० ८३

जून से भूखा है, वह बोल उठी—"वह ठाकुर के द्वार गई। ठाकुर ने उसे कमरे में बुलाया और उसके सतीत्व के बदले उसे झोली-भर धान दिया।"[1] 'पुनर्नवा' उपन्यास में मृणालमंजरी और आर्यक का आलिंगन करना तथा समाधिस्थ होना भी यौन विकृति का परिचायक है—"सैंकड़ों बार लड़ाई-झगड़े से लेकर पुनर्मैत्री तक का अभिनय कर चुके थे। परन्तु आज दोनों को नई अनुभूति हुई। ऐसा जान पड़ा जैसे अन्त:स्तल का सारा रस उमड़कर आ गया है। आर्यक को रोमांच हो आया और मृणालमंजरी पसीने से तर हो गई।"[2] इसी उपन्यास में चन्द्रा को लोग काम-विलुप्ता कहते हैं किन्तु वह केवल आर्यक के संग रहकर उन्हें देखकर ही अपनी यौन वृत्ति से सन्तोष पाना चाहती है। इस बात के लिए वह मैना से प्रार्थना भी करती है। किन्तु दोनों के मन में संघर्ष छिड़ जाता है—"वह तेरा है और तेरा ही बना रहेगा। पर मैं अपने जन्म-जन्म के सगी को चाहू भी तो कैसे छोड़ सकती हू। बोल बहन, इतनी-सी मेरी साध तो पूजने देगी ना ?"[3] 'एकदा नैमिषारण्ये' में उपन्यासकार ने संभोग क्रिया का विश्लेषण किया है—"प्रजनन की संभोग-क्रिया कुरूप भी है और कठोर भी, किन्तु भोगने वालों के द्वारा अतीव सुन्दर और आनन्दकारी मानी जाती है।"[4] यही अनुभव एक तृष्णा को जन्म देता है। यही तृष्णा जगत् के समस्त विद्रोह तथा विरोधों की जननी है। इसी के कारण राजा राजा से लड़ता है। ब्राह्मण से ब्राह्मण, क्षत्रिय से क्षत्रिय, माता से पुत्र, और पुत्र से माता लड़ती है। चोर इसीलिए चोरी, कामुक परस्त्री-गमन और धनी गरीबों को चूसते हैं। यह तृष्णा ही दु:ख का कारण है।"[5] काम-भावना से आक्रान्त व्यक्तियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि "इस प्रकार अनेक लोगों से कामवासना को दबाकर वे जितना ही बाहर से सध रहे थे, उतना ही भीतर से बिखर भी रहे थे। अयोध्या और लखनऊ में बीते हुए ये संघर्ष-भरे दिन उंगलियों की पोरों से आगे बढ़ गये।"[6] उपन्यासकार *कहना चाहता है कि दमित कामवासना ने ही इस विकृति को जन्म दिया तथा* इस विकृति के प्रदर्शन द्वारा ही समाज में शोषण-प्रक्रिया निरन्तर गतिशील रहती है। संन्यासियों तथा भक्तों द्वारा भक्ति की आड़ में इस विकृति को फलते-फूलते हुए उपन्यासकारों ने देखा है। 'महाकाल' उपन्यास में एक याचिका का कथन इस बात का स्पष्टीकरण कर देता है—'एक युवा संन्यासी नगर में आया

१ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ६१
२ पुनर्नवा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ५०
३ वही, पृ० १७७
४ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर, पृ० २८८
५ वही पृ० २८६
६ वही, पृ० ४०१

था और अपने भक्तो के पर्दे के पीछे कई स्त्रियो से सहवास कर चुका था। एक स्त्री ने आरोप लगाया था कि वह उसके पास साधन सीखने के लोभ से गई थी और भक्त बनकर यह याचिका कर रही है।"[1] 'चीवर' मे लोकायत तथा राज्यश्री का वार्तालाप संभोग का विवेचन करता है। पुरुष जहा भोग को आनन्द मानता है, वहा स्त्रिया इस भोगवृत्ति के कारण दु:खाक्रान्त हो जाती हैं। राज्यश्री ने कहा—"'वे क्या भोगी नही है?' 'भोग तो आनन्द है देवी!' मितकाली ने कहा, 'किन्तु भोग योग के रूप मे ही आनन्द है अन्यथा उसे देखने का प्रयत्न कितना जघन्य है!' मितकाली हस दी। राज्यश्री ने सिर उठाकर कहा, 'यह भी झूठ है, भोग ही मनुष्य के दु:ख का प्रारम्भ है।' "[2] "वासना का दमन वासना की पूर्ति है।"[3] उसी उपन्यास मे 'सामन्त अर्जुन ने उस स्त्री को अधकार मे घसीटा। और जब उसे प्रकाश मे देखा, वह उसका रूप देखकर पागल हो गया और उसने उससे नितान्त बर्बर वासनामय अपराध किया और फिर जब उसे अपने किए का ध्यान आया तो उसने उसकी हत्या कर दी।'"[4] 'ठकुराणी' उपन्यास मे महारानी सूरज पर आरोप लगाती है कि महाराजा का धर्म-कर्म इसने भ्रष्ट कर डाला है—"वे हर रोज नयी-नयी छोकरियो को जनानी ड्योढी मे लाते हैं।·· मैं बहुत दु:खी हूं क्योकि इनके दुष्कर्मों का प्रभाव मेरे बेटे पर भी पड रहा है।" "तुम यह सब सहन कर सकती हो। मैं नही सह सकती। मैं इस हरामजादी का नाश करके ही छोड़ूगी।"[5] अत यह दोष औरत का नही वरन् महाराजा की यौन विकृति का है जो औरत-औरत के मध्य सघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर शोषण को बढावा देता है।

'पुनर्नवा', एकदा नैमिषारण्ये', 'चीवर', 'अमृत पुत्र', 'पतन', 'महाकाल' आदि उपन्यासो मे यौन विकृतियो के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। इनमे से कतिपय उपन्यासो मे यौन विकृति विलास का साधन बनती है तो किन्ही उपन्यासो मे अर्थाभाव-पूर्ति का माध्यम। अग्निदत्त 'गढकुण्डार' मे मानवती से प्यार करता है। अपनी प्रिया से एकान्त मे मिलकर प्रसन्नता का अनुभव करता है। उसे देखकर ही वह यौन तृप्ति करता है—"अग्निदत्त के मुख पर उस दिन उल्लास का अनन्त विलास दिखाई दे रहा था। तृप्ति के अमिट चिह्न लक्ष्य होते थे।"[6] किन्तु राजघर से मानवती की सगाई की बात सुनकर वह मानसिक

१. महाकाल—गुरुदत्त, पृ० ६७
२ चीवर—रांगेय राघव, पृ० ५३
३ वही, पृ० १२५
४ वही, पृ० २४१
५ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १८१
६ गढ़कुण्डार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १८४

संघर्ष से जूझने लगता है—"मेरे जीते जी राजधर मानवती का पति न हो सकेगा।"[1] इसी उपन्यास मे हेमवती तथा नाग का प्रणय-प्रदर्शन भी यौन चेतना की अभिव्यक्ति करता है—"आंगन मे पहुंचने पर नाग धरती पर ही लेट गया और तलवार की मूठ का सिरहाना बना लिया। हेमवती को देखने की इच्छा से आंखें उसकी ओर की। हेमवती ने उसे अच्छी तरह देख लिया और शर्म से आंखें नीची कर लीं। उसने कटोरा लेने के लिए हाथ बढ़ाया। नाग की कलाई से उसकी कोमल उंगलियां छू गई।"[2] 'सिंह सेनापति' में राजतन्त्र मे यौन-विकृति का विधान दृष्टिगत होता है—"राज तन्त्र नर-नारियों के लिए बंदीगृह है। वहां राजा के सामने किसी मनुष्य का कोई मूल्य नहीं। वहां नारी-तन क्रीडा और कामुकता के लिए खिलौना है। वहां स्वतन्त्र मानव के लिए कोई स्थान नहीं।"[3] राजतन्त्र की कामुक प्रवृत्ति ने नारियों का भरपूर शोषण किया है। 'दिव्या' में शिलाखण्ड पर नारी का एक उन्मुक्त स्तन अंकित करता हुआ मारिश यौन विकृति की अभिव्यक्ति करता है—"यही अंग नारी के नारीत्व की सार्थकता के लिए पुरुष का आह्वान करता है और फिर उस फलीभूत सार्थकता का शोषण करता है।"[4] 'ठकुराणी' मे ठाकुर द्वारा किये गये यौन अत्याचार का ब्योरा जमना अन्य दासी को इस प्रकार सुनाती है कि मेरे पिता ने मुझे गरीबी में ठाकुर को बेचा था तथा ठाकुर ने मुझे अपनी रानी बनाकर रखने का आश्वासन दिया था—"किन्तु ठाकुर मेरे साथ खेल का व्यवहार करता था। वह शराब और अफीम का नशा करके इस तरह मेरे शरीर को नोचता था कि कभी-कभी तो मैं दुख से तड़प उठती थी और मेरी इच्छा होती थी कि मैं हवेली के सबसे ऊंचे बुर्ज से कूदकर अपनी जान दे दू।"[5] ठाकुर द्वारा किये गये यौन-अत्याचार में परपीडन की यौन विकृति मौजूद है जो अन्ततः संघर्ष का कारण बनती है। 'राणा सांगा' मे मनसुख सूरज से कहता है—"कभी-कभी अपने किए पर सोचता हू तो लज्जा से गर्दन झुक जाती है। तुम न आते तो अभी तक न जाने कितने पाप मैं और कर डालता। फिर कई बार पुरानी वासना जब उभरकर सामने आती है तो पागल हो जाता हू···पागल।"[6] यह कथन मानसिक संघर्ष एवं यौन विकृति का परिचायक है। 'अमृत पुत्र' मे अश्वराज को आचार्य का श्रेष्ठिपुत्री को वासनाभरी दृष्टि से देखना एक यौन विकृति का आचार ही

१ गढ़कुण्डार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २७५
२ वही, पृ० ६२
३ सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १०४
४ दिव्या—यशपाल, पृ० १६२
५ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २०
६ राणा सांगा—सत्यदेव शकुन, पृ० ६१

लगता है—"आप सयम का, साधुत्व का उपदेश हम लोगों को तो देते हैं किन्तु स्वय आप श्रेष्ठिपुत्री⋯कुमार देवी की ओर इस प्रकार वासनाभरी दृष्टि गड़ा गड़ाकर क्या देख रहे थे ?"[१]

सैक्स सबंधी अनैतिक और कुत्सित सम्बन्धों का विश्लेषण यूरोपीय उपन्यासो की एक विशेषता रही है। उनमे उपन्यासकार खुलकर यौन चर्चा करता है। वैसे भी "स्त्री पुरुष के सामान्य, स्वाभाविक गति के आकर्षण के अतिरिक्त कामवासना के कई विकृत रूप भी होते हैं। समलैंगिक आकर्षण, अनुचित और समाज-विरोधी रूप म प्रकट होनेवाले लैंगिक व्यवहार आदि इनमे मुख्य हैं।"[२] 'पतन' उपन्यास मे सरस्वती का व्यक्तित्व यौन विकृतियो से ग्रस्त है—"सरस्वती अर्द्ध नग्नावस्था मे पलग पर बैठ गयी। उसने रणवीर का हाथ पकड़ लिया। इसके पश्चात् उसने आलमारी से शराब की बोतल निकाली।"[३] व्यक्ति यौन विकृतावस्था म व्यभिचार की ओर उन्मुख होता है—"व्यभिचार के दो कारण होते हैं—समाज और प्रकृति। समाज का प्रभाव मनुष्य के जीवन मे बहुत महत्त्व का है। प्रकृति दूसरा कारण है, और यह कारण बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ लोग प्रकृति से ही विलासप्रिय होते है। उनकी प्रकृति, जैसे ही मनुष्य दूषित समाज के ससर्ग म आया, उग्र रूप धारण कर लेती है और वह मनुष्य को बहुत नीचा गिरा देती है।"[४] 'ठकुराणी' मे ठाकुर अनूपसिंह अपाहिज और नपुसक है। वह अपनी यौन तृप्ति अन्य लोगो के यौनाचार के माध्यम से करता है—"नैना आकर उसके वीभत्स जीवन की घिनौनी घटनाए सुनाती—वह आजकल अपने हवा महल मे पातुरो का नृत्य कराता है। उसके खास नौकर व अन्य मित्र उन युवतियो के साथ व्यभिचार करते हैं और वह देख देखकर विचित्र तरह से प्रसन्न होता है। उसकी मुद्रा इतने विकृत उल्लास से दीप्त होती है, जिसे देखकर हृदय काप उठता है।"[५] अनूपसिंह का यह यौन-विकृत आचार शोषक समाज की विकृतियो को उजागर करता है। सम्पूर्ण शोषण की तह मे एक ही कारण निहित रहता है, वह है धन। 'मुर्दों का टीला' मे मनुष्य की तृष्णा को ही पाप की जड़ माना गया है—"किन्तु छेका! देवता क्या इस प्रकार के वासनामय अनाचार सह सकेंगे ?"[६] नीलूफर कहती है—"उच्च वर्ग के ज्ञानी जब थक जाते हैं तो मदिरा पीते और सो जाते, इस आशा मे कि जो रहस्य जाग्रत मे नही खुलते वे स्वप्न

१ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल पृ० ९३
२ हिंदी उपन्यास का अध्ययन—डा० गणेशन पृ०, ३२८
३ पतन—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १४६
४ वही, पृ० १४६
५ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १३०
६ मुर्दों का टीला—रागेय राघव, पृ० ६३

मे आकर स्पष्ट हो जाते हैं। पर स्वप्न मे बात और भी जटिल हो जाती है।"[1] नीलूफर इस विकृति की विवेचना करके बताना चाहती है कि इस मूल विकृति के कारण आज समाज मे सघर्ष दिखाई देता है। यदि कामवासना को दबाकर रखा जाय तो मानसिक विकार पैदा करती है और यदि उभारकर रखा जाय तो समाज मे सघर्ष की परिस्थितिया उत्पन्न करती है, अत मार्क्स ने भी सैक्स को वर्ग-सघर्ष का एक कारण माना है।

'जय जगलधर बादशाह' मे शाही नौकरो की धनाधिक्य के कारण उत्पन्न यौन विकृतियो का चित्रण किया गया है। ऐयाशी शाही दरबार तक ही परिसीमित नही रहती वरन् शाही नौकरो के बन्द घरो मे भी दृष्टिगत होती है—अर्थ के आधार पर नारी के सतीत्व भग करने की प्रक्रिया ने भी समाज मे सघर्ष को जन्म दिया है। 'जनानी ड्योढी' मे समलिंगी यौन विकृत अवस्था का वर्णन किया गया है—"मैं पलग पर सोयी किस्सा नागजी साभलदे पढ रही थी कि जोखी मेरे पास आयी। वह काफी गभीर लग रही थी। आते ही मुझ पर पड गयी। उसने मुझे बाहो मे भर लिया। वह बहुत देर तक मेरे प्रेम मे डूबी रही।"[2] नारी के प्रति नारी का यौनाकर्षण यौन विकृति के अन्तर्गत परिगणित होता है। इसमे यौन अतृप्ति का सघर्ष छिपा रहता है—"जोखी दारू मे धुत थी। उसके पास कोई किशोरी सोई हुई थी। वह उसके डील पर धीरे-धीरे हाथ फेर रही थी। शराब का गिलास भरा था। वह किशोरी अर्धनग्न-सी ऐसी पडी थी मानो वह लाश हो। मैं समझ गयी कि यह बेचारी जोखी की दहशत से घिरी हुई है। उसकी आखो म रोमाच की जगह भय लहरा रहा था। उसकी काचली अपने स्थान से ऊपर थी।"[3] इसी उपन्यास म महाराजा के यौन विकृतिपूर्ण कृत्यो का वर्णन भी हुआ है। महाराजा नशे मे धुत और बेहद उत्तेजित रहते थे। वे अपनी यौन विकृति का प्रदर्शन दासी एव दावडी के समक्ष करते थे—"जिस रूप को हम देखकर मुग्ध हो जाते थे, वह रूप, वह असर उनके यौवन मे था। महाराजा ने मेरे सामने ही उसे इस तरह दबोचा जैसे दैत्य किसी राजकुमारी को दबोचता है। दावडी भय और आतक के कारण एकदम निर्जीव पत्थर-सी हो गयी। महाराजा कुछ क्षणा तक उसके शरीर से खेलते रहे, फिर उन्होने कहा उसे लात मारकर—'एकदम मुर्दार। कहा यह, कहा हमारी नैनरस।'"[4] राजा महाराजाओ का सतोष केवलमात्र इसी से नही हो जाता

---

१ मुर्दों का टीला—रागेय राघव, पृ० २६१
२ जनानी ड्योढी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ५१
३ वही, पृ० ६०-६१
४ वही, पृ० १००

था। व अपनी यौन हवस की पूर्ति के पश्चात दास-दासी एव दावडी को कठोर दण्ड भी दते थे। उनकी यौन विकृतिया कठोर अयाचार का कारण भी बनती थी जिसके कारण समाज म सघष की भावना को प्रश्रय मिलता रहा। जय यौधय म राहुल साकृत्यायन ने भी इस सम्बध म उल्लेख किया है— सात आठ वष से चौबीस पच्चीस वष के बीच से ऊपर लडके लडकियो का सम्मिलित शयनगृह था। उनके एक दूसरे से मिलन म कोई बाधा नही थी। कुटिया के भीतर तो लडके ही नही लडकिया भी अक्सर पूणतया नग्न रहती थी। इस अवस्था की मैं कभी कभी पाटलिपुत्र के नर नारियो के अन्त पुर से तुलना करता था कितना भारी अन्तर था। वहा पाटलिपुत्र के नर नारियो का सारा समय कामुकता (और उससे भी बीभत्स रूप म) की बातें सोचने कहने करने के सिवा उनके पास कोइ काम न था और यहा किसी का उधर ध्यान भी नही जाता था।[1] यहा उपन्यासकार ने यौन विकृति मूलक सघष को समाप्त करने की प्रेरणा दी है। ठकुराणी म अनूपसिंह के नपुसक होने के कारण यौन विकृतिया अधिक बढ जाती हैं— अनूपसिंह नशे म धुत था और उसके दोनो खास नौकर बन्दरो की तरह उछल कूद मचा रहे थे। एक लडकी अधनग्न पडी थी। वह भीतर ही भीतर सिसक रही थी।[2] अनूपसिंह सामने स्त्री पुरुषो के यौनाचार देखकर बहुत तृप्त होता था। उसके स्वभाव म परपीडन की यौन विकृति छिपी हुई थी। सामने स्त्री को पीडित और सिसकता देखकर बहुत खुश होता था। वह अपने खास नौकरो को अपने सम्मुख इस प्रकार के यौनाचार करने का आदेश देता था। वैशाली की नगरवधू म महाराज दधिवाहन कुण्डनी के उन्मादक रूप पर मोहित हो जाते हैं— कुण्डनी के यौवन मत्त नयन और उद्ध गजनक श्रेष्ठ देहयष्टि—इन सबने महाराज दधिवाहन को कामान्ध कर दिया।[1] कुण्डनी महराजा की यौन विकृति का शिकार नही होना चाहती। वह काल नृत्य का अभिनय करती हुई मृत्यु का आलिंगन करती है। नारी की विवशताओ और सघष का अन्त मृत्यु के पश्चात ही होता है। उस एकान्त रात को अनावत सुदरी कुण्डनी की देह नृत्य की अनुपम शोभा का विस्तार कर रही थी और काम वेग से महाराज दधिवाहन की रक्तगति असयत हो गई। कुण्डनी ने चोली से एक पोटली सी निकाली। उसमे महानाग ने अपना फन निकाल कर उसके मुह के साथ नृत्य करना प्रारम्भ किया। नागराज कुण्डनी का अधर चुम्बन करके शान्त भाव से उसी बहुमूल्य थली म बैठ गए। विष की

---

१ जय यौधय—राहुल साकृत्यायन पृ० १८४
२ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० १६२
३ वैशाली की नगरवधू—आचाय चतुरसेन पृ० १८४

ज्वाला से कुण्डनी लहराने लगी। महाराजा दधिवाहन ने मृदंग फेंककर कुण्डनी को आलिंगनपाश में कस लिया। ज्यों ही कुण्डनी के अधरोष्ठ चुम्बन किया, त्यों ही वह तत्काल मृत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।'"[1] इस अति लिप्सा का कारण 'एकदा नैमिषारण्ये' में विवेचित किया है—"'तब यह अति लिप्सा क्यों?' 'सम्भवत कुछ वर्षों तक नपुंसक रहने की यह प्रतिक्रिया है।'"[2] 'चित्रलेखा' उपन्यास में बीजगुप्त तथा चित्रलेखा का व्यवहार यौन-वृत्ति को प्रदर्शित करता है—"बीजगुप्त ने चित्रलेखा को आलिंगनपाश में लेकर कहा, 'तुम मेरी मादकता हो।' चित्रलेखा ने उत्तर दिया, 'तुम मेरे उन्माद हो।'"[3] "बीजगुप्त ने हँसकर कहा, 'मादकता और उन्माद—इन दोनों का सदा साथ रहा है और रहेगा। चित्रलेखा, हम दोनों कितने सुखी हैं।'"[4] परन्तु विलास और विस्मरण पर टिका हुआ यह सुख न सच्चा है तथा न स्थायी है।

वस्तुत प्रेम और वासना में भेद है। वासना पागलपन है तथा प्रेम गम्भीर है। प्रेम का अस्तित्व अमिट है जबकि वासना का अस्तित्व क्षणिक है। इसी कारण यौन-विकृत अवस्था में अनेक अनाचार होते हैं। अनाचार, शोषण, घुटन सभी संघर्ष के उत्प्रेरक तत्त्व हैं। इसी आधार पर 'पतन' उपन्यास की सुभद्रा नाच-रंग, धन धान्य में भी नहीं रमती। उसका हृदय अपने प्रेमी के लिए आतुर रहता है—'मुझे धन नहीं चाहिए, ऐश्वर्य नहीं चाहिए। मुझे सुख चाहिए, यहाँ सुख नहीं। सुख तुम्हारे साथ में है। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे यहाँ से ले चलो। चलो, देश छोड़ दें। मेहनत-मजदूरी करके हम दोनों रहेंगे, पर एक-दूसरे के पास रहेंगे।'"[5] अत राहुल सांकृत्यायन, यशपाल प्रभृति उपन्यासकारों ने "अनेक स्थलों पर भोग की समता, श्रम की समता उत्पादन की समता, विषमता के विरोध, अहंभाव के उन्मूलन आदि का प्रतिपादन एवं समर्थन कर बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।"[6] इस प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने यौन-विकृतियों का चित्रण करते हुए उनका संघर्ष के अनुप्रेरक तत्त्वों के रूप में उल्लेख किया है।

धार्मिक तथा नैतिक पतन

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति ही कायिक कर्म से विमुख होकर दूसरों के श्रम का शोषण करते हैं। धर्म की आड़ में अर्थहीन व्यक्तियों का भरपूर शोषण

---

१ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १८६
२ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर, पृ० ४१३
३ चित्रलेखा—भगवतीचरण वर्मा, पृ० १०
४ वही, पृ० १३
५ पतन—भगवतीचरण वर्मा पृ० १९३
६. हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन, पृ० ३३२

होता था, सती पर निर्मम अत्याचार किया जाता था, छुआछूत का बोलबाला था, विधवा-विवाह नहीं हो सकता था। शूद्र और स्त्रियों को मानवीय अधिकार प्राप्त न थे। लोग छिपकर नीच स्त्रियों से व्यभिचार करते थे। स्त्रियों का व्यापार होता था। दास खरीदे जाते थे। नर-बलि भी होती थी।"[१] बढ़ते पापाचार द्वारा नैतिकता मिट जाती है तथा धर्म के प्रति अनास्था का जन्म होता है यथा—"भगवान धनवानों का होता है। अगर भगवान होता तो इस सड़ाँध मे सड़ रही मानवी का हाहाकार और आर्तनाद सुनकर 'द्रौपदी की कथा' की पुनरावृत्ति नहीं कर देता?"[२] निश्चय ही अनास्था के कारण धार्मिक पतन होता है। 'सोमनाथ' का महमूद भी अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों को हीन दृष्टि से देखता था—"अन्य धर्मावलम्बियों के लिए वह मृत्यु-दूत था। हिन्दुओं की पवित्र एव पूज्य मूर्तियों को ध्वस्त करने मे वह अपना गौरव समझता था। उसका विश्वास था कि मैं खुदा का बन्दा महमूद, खुदा के हुक्म से कुफ्र तोड़ता हूं।'[३] 'बाण भट्ट की आत्मकथा' मे हजारीप्रसाद द्विवेदी ने धर्म की व्याख्या को न्याय से जोड़ा है—"तुम नहीं समझते कि न्याय पाना मनुष्य का धर्मसिद्ध अधिकार है और उसे न पाना अधर्म है।"[४] चारु चन्द्रलेख' में उपन्यासकार का मत है—"धर्म कोई संस्था नहीं है, वह मानवात्मा की पुकार है।'[५]

मानव का शोषण करना किसी भी धर्म का लक्ष्य नहीं है वरन् उस शोषण से मुक्ति दिलाना ही धर्म की प्रथम पहुंच है, यदि धर्म यह कार्य करने म असमर्थ है तो हमे ऐसे धर्म स विमुख हो जाना चाहिए। मार्क्स भी धर्म पर विश्वास नहीं करता था, न ही वह ईश्वर को मानता था। धर्म और ईश्वर की ओट म मानव मानव का रक्त चूसता है, यह उस सहनीय न था। वर्ग-संघर्ष वर्गहीन समाज की स्थापना का श्रेष्ठतम कदम है जिसमे कोई भी धार्मिक शोषण सम्भव नहीं होगा। 'विराटा की पद्मिनी' मे कुंजर धर्म को न्यायसगत युद्ध मानता है। अत्याचारियों से लड़ाई करना तथा न्याय की प्राप्ति करना ही सच्चा धर्म है। "नवाब से लड़ना धर्म है। धर्म की रक्षा करना कर्तव्य है। कर्तव्य का पालन करना धर्म है।'[६] 'ऊजली' उपन्यास मे ऊजली के पिता पाहुणे को मौत से बचाने के लिए अपनी बेटी को धर्म-पालन की शिक्षा तथा आज्ञा देते है, जो वास्तव मे मानव-धर्म है, किन्तु समाज द्वारा उस कृत्य की अवहेलना तथा

१ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २१४
२ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ० ४७
३ सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन पृ० ३८५
४ बाण भट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २२७
५ चारु चन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०७
६ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २१३

तिरस्कार धर्म के प्रति अनास्था उत्पन्न कर देता है—"पगली, मेरी बात मान और एक पाहुणे को मौत के मुह से बचाकर धर्म का पालन कर। पर-पुरुष के साथ शयन की बात दिमाग से निकाल दे और सोच कि तू शय्या-भोग की नारी के रूप में नही बल्कि जीवनदायिनी के रूप में दवा बनकर कुछ कर रही है।"[1] 'दिव्या' उपन्यास में धर्म तथा ब्राह्मण-वर्ग का उपहास उड़ाते हुए उन्हें कुक्कर की उपाधि से विभूषित किया है—"मित्र, यही तो अनोखी बात है। कुत्ता कुत्ते को काटता है और मालिक के अन्न की रक्षा करता है। वैसे ही हम राजपुरुषों की प्रसन्नता के लिए एक-दूसरे का हनन करते हैं। मित्र तुम्हारी कटि में भी राजपुरुष की मुद्रा का पट्टा बंध जाय तो जानते हो क्या होगा? तुम ड्योढ़ी पर बंधे कुक्कर की भांति पथ पर चलने वाले कुक्करों पर गुर्राओगे।"[2] देखो, खाने में स्वयं उतना पुण्य नहीं, जितना ब्राह्मणों को खिलाने में है, जानते हो क्यों? ब्राह्मण देवता के कुक्कर हैं।"[3] 'सिंह सेनापति' उपन्यास में राजाओं का धर्म तो पर-धन तथा पर-नारी का अपहरण-मात्र ही बनाया है। अतः धर्म को नारी व धन के शोषण का मार्ग बताया है जो कि त्याज्य है—"राजा जुल्म करते हैं, परधन, परदारा का अपहरण उनका धर्म-सा है।"[4] धर्म के नाम पर स्त्रियां अपहृत हो जाती थी—'ब्राह्मणों की विधवाएं जिन्हें पुनर्विवाह का अधिकार नही था, यहां अत्यन्त धार्मिक बनकर आती थीं और साधुओं से दिव्य गर्भ धारण करके या तो उन्हीं के साथ चली जाती थी, या फिर बालक को जन्म देकर गंगास्नान करके पवित्र होकर वज्रयानियों में जाकर फिर साधना करती थी।"[5]

धार्मिक पतन के साथ-साथ नैतिक पतन का चित्रण भी आलोच्य उपन्यासों में किया गया है। 'पुनर्नवा' उपन्यास में धर्म को महाकाल का रूप माना है। 'चन्द्रमौलि' धर्म तथा धर्म के विधि-विधान पर विश्वास नही करते। वे कहते हैं कि धर्म के दो छोर हैं—"एक तरफ देखो, स्पर्धित क्रूरता और उन्मत्तता का निर्लज्ज हुंकार सब कुछ को उजाड़कर, रौंदकर ध्वस्त करने पर तुला है, दूसरी ओर भीरुता और निष्क्रियता का दुविधाभरा भीरु पद-संचार जो चुपचाप आत्म-समर्पण कर रहा है। इस ओर लज्जा नही तो उस ओर दृप्त जिजीविषा का कोई चिह्न नही।"[6] धर्म को केवल धर्म ही माना जाय, इसके आधार पर शोषण,

१. कजली—ललितकुमार आजाद, पृ० २२
२ दिव्या—यशपाल, पृ० ५५
३. वही, पृ० ५५
४. सिंह सेनापति—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १०१
५. चीवर—डॉ० रांगेय राघव, पृ० १९८
६. पुनर्नवा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २६६

दुराचार तथा कुरीतियो का प्रसार-प्रचार न किया जाय। 'अमृत पुत्र' उपन्यास मे कुमारदेव कहते हैं—"धर्म तो मनुष्य के मन की उच्चतम, पवित्रतम भावना का ही दूसरा नाम है। उसमे क्या शैवमत और क्या जैन धर्म ? किसी भी नाम से पुकारो, किन्ही भी क्रियाओ द्वारा मन को इस स्थिति तक पहुचने का प्रयत्न करो, धर्म का वास्तविक रूप तो एक ही है। जिस प्रकार पृथ्वीतल पर प्रवाहित होने वाली सरिताए एक ही समुद्र मे विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ससार के सारे धर्म एक ही परमात्म-बिन्दु तक पहुचकर लय हो जाते हैं।"[1] धर्म यदि मानववादी दृष्टिकोण का सदेश देता है तो समाज मे धर्म के नाम पर न तो कभी शोषण होगा तथा न ही वर्ग-सघर्ष की परिस्थितिया उत्पन्न होगी। धर्म जब धनप्राप्ति का साधन और शोषण का आधार बन जाता है, तभी सघर्ष का प्रारम्भ हो जाता है। मार्क्स ऐतिहासिक दृष्टि से समाज की प्रत्येक अवस्था मे सघर्ष की परिस्थितिया अनिवार्य मानता है। हमारे यहा पण्डे-पुजारियो का दृष्टिकोण भी पूजीवादी ही बना रहता है—"हिन्दुओ के धार्मिक भेद-भावो ने लोगो के मनो को छिन्न-भिन्न और एक-दूसरे का विरोधी बना दिया था, जिससे भीतर-ही-भीतर हिन्दू शक्ति बिखर चुकी थी।"[2] फलत. सघर्ष एव धार्मिक पतन प्रारम्भ होता है।

प्रत्येक धर्म नैतिकता तथा कर्तव्य-पालन की शिक्षा देता है। मत-मतान्तर ईश्वर के द्वारा नही, मानव द्वारा रचे गये हैं। जहा निम्न-वर्ग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं यथा—रोटी, कपडा, मकान की पूर्ति करने मे असमर्थ रहता है, वहा धार्मिक उपदेशक का सदेश है—"सासारिक इच्छाए अनन्त हैं। एक के बाद एक इच्छा जागृत होती जाती है। इसलिए ज्ञानी-जन कहते हैं कि इच्छाओ पर विजय प्राप्त करो। जीतिच्छा बन जाओ।"[3] ये उपदेशक स्वय अपनी इच्छाओ का दमन करने मे जब असमर्थ रहते हैं तो अन्य साधनो का उपयोग करते हैं—"वह वासना को दबाने मे असफल हो तो मद्य का सेवन इतना अधिक करते है कि दीन-दुनिया को भूल जाते हैं। यह खाते भी इतना हैं कि जितना एक साधारण मनुष्य नही खा सकता है। अत इन्हें अघोरी कहा जाता है।"[4] अपने-अपने रास्ते बनाकर उदर-पूर्ति करते हुए ये धार्मिक उपदेशक गरीबो का शोषण करते हैं। मार्क्स सभी प्रकार के शोषण से निम्न-वर्गों को मुक्त कराना चाहता है। फलत जिस जिस आधार पर समाज मे इनका शोषण होता है, वह

---

१ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ८६-९०
२ सोना और खून (भाग १) आचार्य चतुरसेन, पृ० १६०
३. शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० १०४
४. जय जगल घर बादशाह—धर्मेश शर्मा, पृ० ७७

उसको मान्यता प्रदान नही करता। मार्क्स को इसीलिए अनीश्वरवादी कहा गया है क्योकि वह धर्म के विरुद्ध तथा नैतिकता के आवरण मे शोषण के विरुद्ध वर्ग-सघर्ष का सदेश देता है। सदियो से अभिशप्त जीवन को विमुक्त करके उन्हे नवजीवन प्रदान करता है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने इस चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियां

आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो का जन्म विभिन्न प्रकार के शोषणो से मुक्ति प्राप्त करने के लिए होता है। ऐतिहासिक उपन्यासों मे युद्ध-घोषणा, अकस्मात् चढाई करना, खजाने को लूटना स्त्रियो पर बलात्कार करते हुए उनका शील-हरण करना आदि कारणो से आन्दोलनकारी परिस्थितिया उत्पन्न हुई जिन्हें उपन्यासकारों ने चित्रित किया है। कतिपय उपन्यासों मे निम्न-वर्ग की अन्य विद्रोही प्रवृत्तियो का भी उल्लेख हुआ है—'झासी की रानी' के उपन्यास का कथानक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन को लेकर चलता है। 'गढ कुण्डार मे' तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए पडिहारो और पवारो का युद्ध वर्णन किया गया है। 'सोना और खून' उपन्यास मे अमेरिका मे छिडे युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा गया है—"सारे अमेरिका मे कपास उगाने के बडे बडे फार्म थे, जहाँ लाखो गुलाम काम करते थे। अब अफ्रीका स गुलामो का आना कानूनन बन्द कर दिया गया था। जिस समय भारत मे सन् सत्तावन का विद्रोह फूटा, उस समय अमेरिका की भूमि मे चालीस लाख गुलाम थे। दक्षिण अमेरिकन समझते थे यदि उन्हें स्वतन्त्र कर दिया गया तो सारा कारोबार चौपट हो जाएगा। इस प्रकार गुलामो के प्रश्न को लेकर दक्षिण-उत्तरी अमेरिकनो के बीच सघर्ष उठ खडा हुआ।"[1] 'झासी की रानी मे बर्बरो की पाशविकता को पुन दोहराया गया—"क्रन्दन पुकार और चीत्कार की समग्र ध्वनिया यकायक सुनाई पडी। जन वध, कत्ल-आम, लोक-सहार का प्रत्यक्ष प्रमाण। रानी का हृदय धसने लगा।"[2] रानी का यह सघर्ष परतन्त्रता से स्वतन्त्रता-प्राप्ति का एक क्रान्तिकारी प्रयास था।

'वचन का मूल्य' मे कादिर का व्यक्तित्व एक अत्याचारी के रूप में चित्रित किया गया है। राज्यलिप्सा के मोह मे उसकी पाशविक वृत्ति उद्दाम हो उठी—"राज्यलिप्सा ने उसे मोहान्ध कर दिया था। उसे ईश्वर, शासन और प्रजा का तनिक भी भय नही रह गया था। सहसा कुछ स्मरण-सा करके उसने अपने

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २४१
२ झासी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ४१४

दुराचार तथा कुरीतियो का प्रसार-प्रचार न किया जाय । 'अमृत
मे कुमारदेव कहते हैं—"धर्म तो मनुष्य के मन की उच्चतम, प
का ही दूसरा नाम है । उसमे क्या शैवमत और क्या जैन धर्म ?
से पुकारो, किन्ही भी क्रियाओ द्वारा मन की इस स्थिति तक प
करो, धर्म का वास्तविक रूप तो एक ही है । जिस प्रकार पृथ्वी
हित होने वाली सरिताए एक ही समुद्र मे विलीन हो जाती
ससार के सारे धर्म एक ही परमात्म बिन्दु तक पहुचकर लय हो
यदि मानववादी दृष्टिकोण का सदेश देता है तो समाज मे धर्म के ना
शोषण होगा तथा न ही वर्ग-सघर्ष की परिस्थितिया उत्पन्न
धनप्राप्ति का साधन और शोषण का आधार बन जाता है
प्रारम्भ हो जाता है । मार्क्स ऐतिहासिक दृष्टि से समाज की
सघर्ष की परिस्थितिया अनिवार्य मानता है । हमारे यहा
दृष्टिकोण भी पूजीवादी ही बना रहता है—"हिन्दुओं के धा
लोगो के मनो को छिन्न-भिन्न और एक-दूसरे का विरो
जिससे भीतर-ही-भीतर हिन्दू शक्ति बिखर चुकी थी ।"[2]
धार्मिक पतन प्रारम्भ होता है ।

प्रत्येक धर्म नैतिकता तथा कर्तव्य-पालन की शिक्षा
ईश्वर के द्वारा नही, मानव द्वारा रचे गये हैं । जहा नि
आवश्यकताओ यथा—रोटी, कपडा, मकान की पूर्ति
वहा धार्मिक उपदेशक का सदेश है—'सासारिक
बाद एक इच्छा जागृत होती जाती है । इसलिए ज्ञानी
पर विजय प्राप्त करो। जीतिच्छा बन जाओ ।'"[3]
इच्छाओ का दमन करने मे जब असमर्थ रहते है त
करते हैं—' यह वासना को दबाने मे असफल हो त
करते हैं कि दीन दुनिया को भूल जाते हैं । यह
एक साधारण मनुष्य नही खा सकता है । अत
अपने-अपने रास्ते बनाकर उदर-पूर्ति करते हुए
शोषण करते हैं । मार्क्स सभी प्रकार के शोष
चाहता है । फलत जिस जिस आधार पर स

१ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल पृ० ८६ ६०
२ सोना और खून (भाग १) आचार्य चतुर
३ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ०
४, जय जगल पर बादशाह—धर्मेश शर्मा

नहीं चाहते थे, वरन् दूसरों की अधिकृत भूमि छीनना चाहते थे।"[1] युद्ध भी हिंसक प्रवृत्ति है। अधिकार की लालसा एवं लूटमार के लिए ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर युद्ध निरन्तर होते रहे हैं। ये युद्ध प्रतिशोध की भावना फैलाते हैं तथा मानव को मानवता से शोषण-हेतु नृशंस बना देते हैं—'महाराज यह प्रतिशोध की भावना का ही फल है। एक एक घर जलाया गया, रौंदा गया, स्त्रियों की लज्जा लूटी गई। हमारे सैकड़ों कलावन्त तलवार के घाट उतार दिए गये। हमारी स्त्रियां शाकम्भरी नरेश के अन्तःपुर में नीच कार्य करने को बाध्य की गईं। हम तो लुट गये महाराज!"[2] इतने शोषण के उपरान्त भी शत्रु की सेनाओं को मैदान से खदेड़ दिया गया। 'वन्दिना' उपन्यास में साम्राज्यवादी भावना को प्रश्रय देते हुए भी जनमानस उसके प्रति विद्रोही भावनाएं रखता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में लेखक ने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रस्तुत किया है— "मैं इस नीति पर विश्वास नहीं करता। मेरा मत है कि साम्राज्य की रक्षा के लिए विजितों को साधनहीन और पंगु बनाये रखना चाहिए। उनका इतना शोषण करना चाहिए कि वे निःस्त्र बन जायें। साम्राज्य का निर्माण विजितों के शवों पर होता है।"[3]

'सोना और खून' उपन्यास में सोना और खून का अर्थ है पूंजी और युद्ध। युद्ध को पूंजीपतियों एवं श्रमिकों की टकराहट का परिणाम बताया गया है—"अब उनके आर्थिक स्वार्थ परस्पर टकराने लगे, जिसने एक नये संघर्ष का रूप धारण कर लिया और पूंजीवादी देशों में लोग, श्रमिक और पूंजीपति इन दो दलों में विभक्त हो गये। इस संघर्ष को दूर करने में इन शक्तिशाली राष्ट्रों ने सुदूर पूर्व के पिछड़े हुए राष्ट्रों पर अधिकार कर, उन्हें कच्चे माल का उत्पादक और पक्के माल का ग्राहक बना लिया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष उठ खड़े हुए।"[4] "इस युद्ध में दो विरोधी राष्ट्रों के गुट परस्पर टकराए। एक वह गुट था जिसके पास साम्राज्य और धन था। दूसरा वह, जो इनसे कुछ छीनना चाहता था। युद्ध का अन्त साम्राज्यों के पक्ष में हुआ परन्तु साम्राज्य-सत्ता डगमगा गई। रूस में सर्वथा नवीन लाल क्रान्ति हुई।"[5] "संसार के देश आर्थिक राष्ट्रवाद की राह पर दौड़कर युद्धस्थली पर एक होते जा रहे थे। घटनाएं अटल भाग्य की भांति संसार को उधर ही धकेले जा रही थीं, जहां सोने के ढेरों के महाकुण्ड बनाए गए थे जिनमें मनुष्य का ताजा खून भरा जाने वाला था। और अन्त में वे

---

१ वय रक्षाम—आचार्य चतुरसेन, पृ० ३४९-३५०
२ चारु चन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १२०
३ वन्दिना—प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ० १२२
४ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ८
५. वही, पृ० १०

एक सरदार को आज्ञा दी -- इस बदमाश के हरमो मे जाकर मनमानी लूट करो। जो कुछ भी मिले, सब लाकर बाहर इकट्ठा करो। कोई भी बचने न पाये। इसके खिदमतगारो की तलाशी लो। इसकी बेगमो को छत पर खडी करके उनके सारे जेवर उतार लो और उन्हें खम्भो मे बाध दो।'[1] फलत जन-सामान्य मे उथल-पुथल मच गई। सभी की विद्रोही प्रवृत्ति भडक उठी और वे सघर्ष के लिए तैयार हो गए। शोषण के फलस्वरूप आन्दोलनकारी प्रवृत्तिया उभरती हैं तथा सघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस सघर्ष का प्रमुख कारण सत्ता होती है। 'रजनीगधा' मे मन्त्री वणिक भी इसका समर्थन करते हैं—"पाण्डवो की सभ्यता और शिष्टता तभी तक है जब तक सत्ता उनके हाथो मे नही है। सत्ता हाथ मे आने पर सब सभ्यता और शिष्टता समाप्त हो जायेगी।"[2] मार्क्स इस सत्तावादी धारणा को ही तोडना चाहता है क्योकि शोषण की प्रक्रिया मे यही मूल का काम करती है। शोषण की भीषणता मे शोषक-वर्ग की राक्षसी प्रवृत्ति उजागर हो जाती है। 'चारु चन्द्रलेख' मे मगोल सेना के आक्रमण तथा अत्याचारो का चित्रण करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं — ' उन्मत्त सैनिक बच्चो को भालो की नोक से छेद देते थे और उसका विजय-ध्वज बनाकर किलकारिया मारते हुए घोडे दौडाते थे। स्त्रियो पर निष्ठुरतापूर्वक भयकर अत्याचार किए गए। न किसी की प्रतिष्ठा का ध्यान रखा गया, न किसी की अस्मत का खयाल। बाजार के बाजार फूंक दिये गये और लूट लिए गए।"[3]

आन्दोलन, युद्ध अथवा सघर्ष प्रतिशोध की भावनाओ से ओतप्रोत होते हैं। अत "इसके लिए अभूतपूर्व क्रान्ति की आवश्यकता है।"[4] "हमारा सारा इतिहास मानव के विकासक्रम पर विश्वास लेकर चल रहा है। सारे सघर्षों, युद्धो और द्वन्द्वो के बीच मनुष्यता ही अपने पथ पर आगे बढ रही है। ऐसी स्थिति मे हम यदि इतिहास को जाति, देश राष्ट्र या किसी अन्य सीमित व्यवस्था के अर्थों मे ग्रहण कर उस यथार्थ सत्य के साक्षात्कार करने की सामर्थ्य प्राप्त करा सकें तो अधिक श्रेयस्कर है।"[5] इस विकासक्रम मे शोषण की निरन्तरता ही वर्ग-सघर्ष को जन्म देती है। 'वय रक्षाम' उपन्यास मे सघर्ष का कारण भूमि को बताया गया है—' यद्यपि उस समय पृथ्वी का विस्तृत भू-भाग रिक्त पडा था, फिर भी भूमि के लिए युद्ध होते थे। जो भूमि स्वच्छन्द थी, वहा लोग बसना

---

१ वचन का मूल्य—शत्रुघ्नलाल शुक्ल, पृ० १२३
२ रजनीगधा—यज्ञदत्त शर्मा पृ० ७४
३ चारु चन्द्रलेख—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६२
४ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० १७९
५ ऐतिहासिक उपन्यास (प्रकृति एव स्वरूप)—डॉ० गोविन्द जी, पृ० ७१ ७२

नही चाहते थे, वरन् दूसरो की अधिकृत भूमि छीनना चाहते थे।"[1] युद्ध भी हिंसक प्रवृत्ति है। अधिकार की लालसा एव लटमार के लिए ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर युद्ध निरन्तर होते रहे हैं। ये युद्ध प्रतिशोध की भावना फैलाते हैं तथा मानव को मानवता के शोपण-हेतु नृशस बना देते हैं—'महाराज यह प्रतिशोध की भावना का ही फल है। एक एक घर जलाया गया, रौंदा गया, स्त्रियो की लज्जा लूटी गई। हमारे सैकडो कलावन्त तलवार के घाट उतार दिये गये। हमारी स्त्रिया शाकम्भरी नरेश के अन्त पुर मे नीच कार्य करने को बाध्य की गईं। हम तो लुट गये महाराज!"[2] इतने शोषण के उपरान्त भी शत्रु की सेनाओ को मैदान से खदेड दिया गया। 'वन्दिता' उपन्यास म साम्राज्यवादी भावना को प्रश्रय देते हुए भी जनमानस उसके प्रति विद्रोही भावनाए रखता है। प्रस्तुत सन्दर्भ मे लेखक ने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रस्तुत किया है— मैं इस नीति पर विश्वास नही करता। मेरा मत है कि साम्राज्य की रक्षा के लिए विजितो को साधनहीन और पगु बनाये रखना चाहिए। उनका इतना शोषण करना चाहिए कि वे नि स्व बन जायें। साम्राज्य का निर्माण विजितो के शवो पर होता है।"[3]

'सोना और खून' उपन्यास मे सोना और खून का अर्थ है पूजी और युद्ध। युद्ध को पूजीपतियो एव श्रमिको की टकराहट का परिणाम बताया गया है— "अब उनके आर्थिक स्वार्थ परस्पर टकराने लगे, जिसने एक नये सघर्ष का रूप धारण कर लिया और पूजीवादी देशो मे लोग, श्रमिक और पूजीपति इन दो दलो मे विभक्त हो गये। इस सघर्ष को दूर करने मे इन शक्तिशाली राष्ट्रो ने सुदूर पूर्व के पिछडे हुए राष्ट्रो पर अधिकार कर, उन्हे कच्चे माल का उत्पादक और पक्के माल का ग्राहक बना लिया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष उठ खडे हुए।"[4] "इस युद्ध मे दो विरोधी राष्ट्रो के गुट परस्पर टकराए। एक वह गुट था जिसके पास साम्राज्य और धन था। दूसरा वह, जो इनसे कुछ छीनना चाहता था। युद्ध का अन्त साम्राज्यो के पक्ष मे हुआ परन्तु साम्राज्य-सत्ता डगमगा गई। रूस मे सर्वथा नवीन लाल क्रान्ति हुई।"[5] "ससार के देश आर्थिक राष्ट्रवाद की राह पर दौडकर युद्धस्थली पर एक होते जा रहे थे। घटनाए अटल भाग्य की भांति ससार को उधर ही धकेले जा रही थी, जहा सोने के ढेरो के महाकुण्ड बनाए गए थे जिनमे मनुष्य का ताजा खून भरा जाने वाला था। और अन्त मे वे

---

१ वय रक्षाम—आचार्य चतुरसेन, पृ० ३४६-३५०
२ चारु चन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३२०
३. वन्दिता—प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ० १२२
४. सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० ८
५. वही, पृ० १०

प्रतीत होता है कि जिस प्रकार प्रसाद सांस्कृतिक गौरव के प्रतिष्ठापक दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार निराला रूढ़ियों के विद्रोह में संघर्ष का चित्र खींचते हैं। निराला सच्चे अर्थों में वर्ग-संघर्ष की सजीव भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

यशपाल जी ने *द्वितीय महायुद्ध की प्रतिक्रियाओं का मार्क्सवादी विश्लेषण* करते हुए 'दिव्या' उपन्यास की सरचना की है। दिव्या का प्राचीर—"दास-दासियों से सेवित सम्पन्न प्रासाद विद्या और संस्कृति का केन्द्र था।"[१] दिव्या का सम्पूर्ण जीवन संघर्षयुक्त दिखाकर उपन्यासकार वर्गगत चेतना प्रदान करता है। 'इरावती' के समान 'जय वासुदेव' उपन्यास में भी वर्णाश्रम धर्म और बौद्ध धर्म की टकराहट का चित्रण किया गया है। नारी की दशा अत्यन्त दीन-हीन बताई जाती है। वे पुरुष की भोग वासना का लक्ष्य बनकर जीवनभर सुख से वंचित रहती हैं। या तो वे वेश्या बन जाती हैं अथवा चुप रह शोषण को सहन करती हैं। इस उपन्यास की नारियों में वर्ग-चेतना होते हुए भी वे संघर्ष नहीं करती हैं। 'मधुर स्वप्न' उपन्यास के मज्दक की विचारधारा साम्यवादी है—"क्वात् ने मज्दक के शक्तिशाली व्यक्तित्व से प्रभावित होकर समाज में भेद-भाव को दूर करने के लिए अनेक नियमों को संचालित किया, जिनमें एक सम्मिलित पत्नी का नियम था, जिसके आधार पर जनता का विद्रोह इतना *उग्र हो उठा कि क्वात् को राजसिंहासन से वंचित होना पड़ा।*'[२] "'मधुर स्वप्न' मानवता का मधुर स्वप्न है जिसमें सामन्ती शासन का वैभव-विलास धर्माचार्यों की अनीति तथा दुराचार और दीन-दुखियों के चीत्कार चित्रित किए गए हैं।"[३]

वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास की वर्तमान स्थिति को साधन बनाकर संघर्ष का विवेचन किया है—"उनकी दृष्टि राष्ट्र के पुनर्निर्माण पर रही है। भारत के पतन के मूल कारण, समाज को उन्होंने क्या ऐतिहासिक और क्या सामाजिक सभी उपन्यासों में अपनी प्रयोगशाला बनाया है।"[४] 'विराटा की पद्मिनी' में युद्धों से पूर्व—युद्धों की तैयारी युद्ध की प्रक्रिया तथा उनके दाव-पेचों का यथार्थ चित्रण करते हुए साम्प्रदायिक वैमनस्य को उभारा गया है। यह विद्रोही पुकार अन्त में वर्गगत संघर्ष का रूप ग्रहण करती है। आचार्य चतुरसेन ने 'लाल पानी' उपन्यास में काठियावाड़ के कच्छ प्रान्त के दो स्वतन्त्र राजाओं के पारस्परिक संघर्ष का विवेचन किया है—"यह उपन्यास सामन्ती युग के रक्त-

---

१ दिव्या—यशपाल, पृ० २०
२ मधुर स्वप्न—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३१३-३१५
३ हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन, पृ० २७२
४ साहित्य संदेश (ऐतिहासिक उपन्यास विशेषांक)—पृ० २९५

भरे दिनों की एक रोमांचकारी सत्य ऐतिहासिक घटना पर आधारित है।'[1] संघर्ष की स्थितियों का अंकन करते हुए उन्होंने 'सह्याद्रि की चट्टानें' उपन्यास में जनसाधारण की विषम आर्थिक स्थिति की विवेचना की है—'औरंगजेब के खजाने का एक बहुत बड़ा भाग युद्धों में व्यय हो रहा था। उसकी धार्मिक कट्टरता के फलस्वरूप हिन्दुओं की दशा और भी दयनीय हो गई थी। हिन्दुओं पर जजिया कर लगा दिया। जजिया का बोझ पड़ने से हिन्दू व्यापारी शहरों को छोड़कर भागने लगे। व्यापारियों के भाग जाने से फौजों को अन्न मिलना भी कठिन हो गया था।'[2]

हिन्दू-मुसलमानों में धार्मिक विद्वेष की स्थितियां भी संघर्ष को जन्म देती हैं—"देश की आर्थिक स्थिति भी उत्तम नहीं थी। प्रजा पिस रही थी, किन्तु कुछ लोग जनता को लूटकर अपना घर भर रहे थे। बड़े-बड़े धनी प्रजा पर मनमाना अत्याचार करके रुपया बटोरते और अंग्रेजों की छत्रछाया में कलकत्ते में आ बसते थे। छोटे नगर टूटने व बड़े नगर बसने लगे। विदेशी वस्त्रों के प्रचार के कारण देश की निर्धनता बढ़ती जा रही थी।"[3] अंग्रेज सब प्रकार से भारतीयों की मानवीयता को खरीद रहे थे—'देश में विद्रोह की भावनाएं व्याप्त हो चुकी थीं। ६ अगस्त सन् १६४२ में आंदोलन आरम्भ हुआ। इसी दिन गांधी जी सहित सब चोटी के नेता जेलों में डाल दिए गये, किन्तु तो भी यह आन्दोलन नहीं रुका। लगभग ८ करोड़ व्यक्तियों ने खुले रूप से इस विद्रोह में भाग लिया। यह विद्रोह गोलियों की बौछारों के साये में खड़ा हुआ। एक हजार से ऊपर जगहों में गोली चली। विद्यार्थियों ने लाखों की संख्या में इस आन्दोलन में सहयोग दिया।'[4] 'सोना और खून' उपन्यास में यह बताया गया है कि सन् १८६० में अकाल की स्थिति की घोषणा के कारण भी संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई—"धनी-निर्धन सब की एक ही दशा थी। धनियों के घर में रुपये और मोहरें थीं, परन्तु अन्न नहीं। कलकत्ता में अंग्रेजों ने बहुत-सा चावल एकत्र कर रखा है, यह सुनकर अन्न की आशा में पुर्निया, दीनाजपुर, बाकुड़ा, वर्द्धमान आदि नगरों के ठठ-के-ठठ लोग कलकत्ता की ओर चले आ रहे थे। कुलीन गृहस्थों की कुलबालाएं आंचल में अशर्फियां और स्वर्णाभरण बांधे बच्चों को सम्भालती गिरती-पड़ती कलकत्ता की ओर जा रही थीं—एक मुट्ठी अन्न मोल लेने की प्रतारणा में। दरिद्रों का तो पार न था। इनमें बहुत राह में भूखों-

---

१ आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य—डॉ० शुभकार कपूर, पृ० २०८
२ सह्याद्रि की चट्टानें—आचार्य चतुरसेन, पृ० १४४
३. आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य—डॉ० शुभकार कपूर, पृ० ३६५
४. धर्मपुत्र—आचार्य चतुरसेन पृ० ११६-११८

प्यासी दम तोड देती थी।'[1] अग्रेजो की शोषण नीति ने बहुत तहलका मचा रखा था। भारत मे कम्पनी सरकार के शोषण के कारण महाराष्ट्र मैसूर आदि राज्यो के नित नये सघर्ष हो रहे थे—'अब उमन और घन बटोरन को पूना और मैसूर सरकारो से लडाई छेड दी थी। उसे अधिक-से-अधिक रुपयो की जरूरत थी। उसने बनारस के राजा चेतसिंह पर हाथ डाला। यह साढे बाईस लाख रुपया हर साल कम्पनी को देता रहा था। अब उससे और पाँच लाख की रकम माँगी जा रही थी। वह हर साल माँगी जान लगी। उसने दो लाख की रिश्वत भी दी, पर उसका छुटकारा न हुआ।'[2] तत्पश्चात् अमीर न बहुत अत्याचार किए, "अमीरो के मकान जला डाले, उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। जागीरप्रथा का खात्मा करने की घोषणा की गई।'[3] इस प्रकार आचार्य चतुरसेन ने शोषण, सघर्ष, युद्ध और शान्ति की परिस्थितियो की विवेचना करते हुए आन्दोलनकारी प्रवृत्तियो का चित्रण किया है।

वस्तुत आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ वर्गगत चेतना का प्रतीक हैं। ये प्रवृत्तियाँ शोषण से मुक्ति पाने का क्रियात्मक पहल हैं। युद्ध या सघर्ष सभी विरोधात्मक परिस्थितियो मे दो विरोधी शक्तियो के परस्पर टकराव स क्रियान्वित होते हैं। यह विरोध वैचारिक स्तर पर भी जन्म लेता है और सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर भी। मूल्यगत विघटन तथा मूल्य-परिष्करण की स्थिति भी सघर्ष को उभारती है। जब एक वर्ग अपने को श्रेष्ठ समझकर दूसरे वर्ग पर दबाव डालने का प्रयास करता है तो समाज मे ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनम शोषण एव अत्याचारो की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। शोषित वर्ग उस प्रक्रिया मे आक्रान्त हो कभी बच निकलने का मार्ग ढूँढता है और कभी वर्ग-सगठन के माध्यम से सघर्ष प्रारम्भ कर देता है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने बडे कौशल स इन समस्त स्थितियो को अपनी कृतियो म उजागर किया है।

साम्प्रदायिक वैमनस्य

साम्प्रदायिक वैमनस्य ने शोषण को अत्यधिक बढावा दिया। साम्प्रदायिक वैमनस्य धार्मिक रूढिवाद के कारण फैला। सोना और खून मे औरगजेब ने इसी आधार पर अनेक अत्याचार किये "सन् १६६६ मे उसने काशी के प्रसिद्ध विश्वनाथ के मन्दिर को गिरवाकर उस पर मस्जिद बनवा दी और उद्धव नाम के एक रमत वैरागी को हवालात मे बन्द कर दिया। मथुरा का सबसे

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १९०
२ वही, पृ० २१३
३ वही, पृ० २१६

बडा केशवराय का मन्दिर जिसे बुन्देले राजा नाहरसिंह देवजू ने तैंतीस लाख रुपयो की लागत से बनवाया था, जनवरी सन् १६७० मे जमीदोज कर दिया और उस जगह भी एक मस्जिद बनवा दी।"[1] 'शाह और शिल्पी' उपन्यास मे ऋषिवर से विमल प्रश्न करता है—क्या हिसा से धर्म की रक्षा हो सकेगी ? "केवल पाप के अतिरिक्त जिनके जीवन मे कोई और भाव ही नही ऐसे य मलेच्छ यवन हमारी धर्म-भूमि भारत को अपने पैशाचिक पावो तले रौंदते चले जा रहे हैं। पवित्र देव-मन्दिरो के स्थान को धूल मे मिलाकर ये एक विशाल श्मशान की रचना कर रहे हैं। बच्चो और बूढ़ो को निर्दयता से मौत के घाट उतार रहे हैं, भारतीय नारी के गौरव को भ्रष्ट कर रहे हैं, हमारे धर्म और सस्कृति को मिट्टी मे मिला रहे हैं।'[2] साम्प्रदायिक वैमनस्य की खाई को पाटने के दृष्टिकोण से अमृतलाल नागर अपने उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्ये' मे कहा है—"ये यवन जिन्हें तुम मलेच्छ कहते हो मूलत आर्य ही हैं।"[3]

साम्प्रदायिकता वैसे तो बहुत पुरानी बीमारी है, किन्तु भारतीय वातावरण मे साम्प्रदायिक दगे ब्रिटिश शासन-काल मे तथा स्वाधीनता के पश्चात् देखे गये—"साम्प्रदायिकता का यह उग्र रूप प्रमुखत ब्रिटिश शासन की नीतियो का ही परिणाम था। ब्रिटिश शासन की सामान्य नीति फूट डालो और राज करो की नीति थी। विशेषत कभी हिन्दुओ और कभी मुसलमानो को कम या ज्यादा महत्व देकर हमेशा एक-दूसरे के खिलाफ बनाये रखा। उनमे साम्प्रदायिक चुनाव-क्षेत्रों और सम्प्रदाय के आधार पर प्रतिनिधित्व की माँग को उकसाया और उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। मार्ले-मिन्टो सुधारो के अन्तर्गत मताधिकारी होने के लिए एक गैर मुस्लिम की कम-से-कम तीन लाख रुपया वार्षिक आय होनी चाहिए, जबकि एक मुस्लिम के लिए तीन हजार वार्षिक आय मताधिकारी होने के लिए काफी थी।"[4] "ब्रिटिश सरकार की यह भी पूरी कोशिश रही कि वर्ग-सघर्ष को साम्प्रदायिक सघर्ष मे बदलकर उसे दिशाहीन कर दिया जाय। कई बार ऐसा हुआ कि हिन्दू मजदूरो की हडताल तोडने के लिए मुसलमान मजदूर लाये गए ताकि मजदूर-पूँजीपति सघर्ष को हिन्दू मुस्लिम संघर्ष मे बदला जा सके।"[5] सन् १६४७ आते-आते अग्रेजो ने भारत छोडना स्वीकार कर लिया किन्तु भारत के दो टुकडे कर गये। समस्त देश लूटमार की भयकर लपटो से आक्रान्त हो रहा था। 'धर्मपुत्र' मे इस भयकर ज्वाला की एक

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १३२
२ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ११
३ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर, पृ० १०७
४. भारत वर्तमान और भावी—रजनी पामदत्त, पृ० २४५
५ हिन्दी की प्रगतिशील कविता—डा० रणजीत, पृ० १६३

झलक देखने को प्राप्त होती है। 'झांसी की रानी' उपन्यास मे साम्प्रदायिक दगे का बिन्दु दुर्गाबाई थी—'दुर्गाबाई सुन्नी मुसलमान थी। वह भी ताजियादारी करती थी और नाचना उसका पेशा था। मन्दिरो मे उसके नृत्य की माँग थी। वह मन्दिरो मे जाने लगी। कुछ मुसलमानो को असगत लगा। चर्चा शुरु हो गई। इस चर्चा म पीरअली ने प्रधान भाग लिया।'[1]

'शतरज के मोहरे' उपन्यास म भी साम्प्रदायिक दगो का उल्लेख किया गया है। हिन्दू-मुसलमानो की पारम्परिक धार्मिक घृणा इस उपन्यास मे स्पष्ट उभरकर सामने आती है— हिन्दू को मुसलमान बनाया जा सकता था पर मुसलमान को हिन्दू बनाना घोरतर अपराध था।''[2] इन प्रचलित परम्पराओ मे वर्गगत चेतना का उदय किया तथा साम्प्रदायिक सघर्ष को वर्गगत सघर्ष मे परिणित किया। हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष को बढावा देने वाले जमींदार वर्ग के लोग थे—"आसपास के अनेक जमींदार लुटेरे बन गये थे और व्यक्तिगत कारणों से किसी को सताने मे उन्हे इतना रस आने लगा था कि अपनी मनोवृत्तियों को लेकर ये हिन्दू-मुसलमान जमींदार प्राय निर्मम और अति क्रूर हो गये थे। एक मुसलमान जमींदार ने अपने पड़ोस के सैयदो के कस्बे पर चढ़ाई की, तीन सैयद मालिको को मार डाला, खूब लूटपाट मचायी, मनमानी की। कोई उसका कुछ न बिगाड सका।[3] आलिगन उपन्यास म उमादेवी ने शिक्षा, धर्म, विवाह, राज्यारोहण, युद्ध आदि म सम्बद्ध तत्कालीन वातावरण का चित्रण करते हुए साम्प्रदायिक सघर्ष को जाति तथा धर्म पर आधारित माना है। प्रारम्भ म यह सघर्ष जातिवाद एव धार्मिक मान्यताओ पर आधारित था किन्तु बाद म यह भी वर्गगत सघर्ष म बदल गया। सोना और खून म नवाब जबदस्तखाँ एक फितरती जालिम बताया गया है। वह हिन्दुओ का कट्टर विरोधी तथा मुसलमानो का पक्षधर था। उसके अधिकारी मालगुजारी वसूल करते समय प्रजा पर अनेक जुल्म ढाते थे— 'यदि कभी कोई शिकायत रिआया पर जुल्म की पहुँची भी तो जमींदार चट से जवाब देते थे कि हुजूर बडे चोरे पुश्त आसामी हैं। लगान न निचोड़ा जायगा तो हम मालगुजारी कहाँ स अदा करेंगे। इस बात का जवाब न थानेदार पर था, न तहसीलदार पर, न मजिस्ट्रेट कलक्टर साहब बहादुर पर। बस, नवाब जबर्दस्तखाँ जैसे जालिम रईस दिन दहाड़े रिआया पर जुल्म करते और कभी-कभी तो कत्ल भी कर डालते थे।'[4] इस प्रकार साम्प्रदायिक वैमनस्य की

---

१ झांसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० २६६
२ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० ३२६
३ शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० २०१ २०२
४ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २५१

भावना ने वर्गगत संघर्ष की भूमिका ही प्रस्तुत नही की अपितु अत्यन्त हिंसक रूप मे उभारा है।

आर्थिक शोषण

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे बताया गया है कि राजाओ, सामन्तो तथा ठाकुरो की एय्याशी वृत्ति के कारण ही गरीबो का आर्थिक शोषण हुआ है। 'सोना और खून' उपन्यास मे शोषक-वर्ग के घोर विलासी जीवन का चित्रण किया गया है—"इसी लूई ने न जाने कितनी सुन्दर कोमलागियो के साथ विलास किया था। प्रजा भूखो मर रही थी और वह अपनी कामलिप्सा मे उनकी कमाई के करोडो रुपये पानी की भाँति बहा रहा था।"[1] 'जय यौधेय' उपन्यास मे बताया गया है कि श्याम वर्णों का शोषण गौर वर्णों के द्वारा हुआ—"गौर वर्ण दूसरे का धन छीनते हैं, दूसरे का जगल छीनते हैं, दूसरे के स्त्री-बच्चो को पशु बनाने के लिए पकड ले जाते हैं। वह झूठ बोलते हैं, देवताओ का भय नही खाते।"[2] जमीदार की बेटी के विवाह के अवसर पर यह परम्परा प्रचलित थी कि आधा धन उनकी प्रजा से एकत्रित किया जाय। यह शोषण धर्म के नाम पर होता था—'मेरे पास आजकल रुपये नही हैं। मैं चाहता हूँ आप मुझसे तीस रुपया ले लें। वैसे आपकी बेटी मेरी बहिन के समान है, पर मजबूरी मेरे सामने है।'[3] 'ठाकुर ने अपनी बेटी के विवाह के लिए अत्यन्त अनुचित तरीके से गाँव वालो से रुपये वसूल किये। इस वसूली मे बेचारे किसान कर्जदार हो गये और दो-चार को अपने खेत गिरवी रखने पडे। एक बार कई किसान ठाकुर के पास फरियाद लेकर गये भी, पर उससे कोई लाभ नही हुआ। उल्टा ठाकुर ने उन्हे नमकहराम और गद्दार कहा।'[4] जमीदारो तथा ठाकुरो द्वारा आर्थिक शोषण भय, पीडा तथा प्रताडना के बल पर किया जाता था। इस शोषण की पराकाष्ठा ने वर्गगत संघर्ष को जन्म दिया।

जमीदार अकाल घोषित हो जाने पर भी किसानो का लगान माफ नही करते—'हम किसानो का लगान नही छोड सकते। ऐसा करेंगे तो हम खायेंगे क्या ?' अन्त मे किसानो की दशा इतनी खराब हो गई कि वे अपनी सौ-सौ रुपयो की गायें-भैंसें एक-एक रुपये मे बेचन लगे।[5] 'अमृत पुत्र' उपन्यास मे वस्तुपाल सेठ इस लूट का विरोध करते हैं—"सो मैं जानता हूँ। गाँव-गाँव मे इस

---

१ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन पृ० २१८
२ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० १६५
३ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ० ५२ ५३
४ वही, पृ० १२१
५ वही, पृ० ८६

बहाने को लेकर जो लूट आप लोगो ने मचाई है वह मुझे मालूम है। गरीब प्रजा से जोर-जबरदस्ती आप द्रव्य ले रहे हैं। लेकिन यदि कोई न देना चाहे तो ?"[१] सिद्दीक सेठ आर्थिक शोषण को बढावा देने मे विश्वास करते हैं—"व्यापारी को अपने व्यापार से मतलब, सेठ ! व्यापार हो गया तो सब ठीक।'[२] 'सोना और खून' उपन्यास मे आर्थिक शोषण का आधार कर-पद्धति को बनाया गया है—"सन् १६७६ मे उसने हिन्दुओ पर जजिया लगाया। जो गरीब हिन्दू इस कर को उठा लेने के लिए औरंगजेब से प्रार्थना करने उनकी राह रोके खडे थे, उन्हे हाथियो से कुचलवा दिया गया।'[३] "किसानो और मजदूरो की दशा बदतर थी। किसान भूखे और नंगे थे। फिर भी इनके ऊपर टैक्सो का बोझा था।"[४] किसानो को अपनी उपज का आधा टैक्स देना पडता था परन्तु बडे-बडे जमींदार टैक्स से मुक्त थे।"[५] यही स्थिति वर्गगत संघर्ष को जन्म देती है। पूंजीवादी मनोवृत्ति के कारण पूंजी का संग्रह मुट्ठीभर ठाकुरो-जमींदारो के पास हो जाता है तथा वे अर्थ के बल पर निम्न वर्गों का भरपूर शोषण करते हुए मनमाना अत्याचार करते हैं। डा० सुषमा धवन के शब्दो मे—"इस वर्गमूलक समाज मे इतरजनो के जीवन का मूल्य अभिजात जनो के सुख तथा वैभव का उपकरण मात्र बनने मे था। इस तरह शोषक तथा शोषित वर्गों की समस्याओ के उद्घाटन द्वारा यशपाल ने इतिहास को मार्क्स की आँखो से देखने तथा समाजवादी चित्रकार की तूली से अंकित करने का उपक्रम किया है।"[६] आर्थिक शोषण के कारण अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं— "प्रजा पर घोर अत्याचार करके आगामीर और रामदयाल को राज-कर वसूल करना पडा था, पर साल खत्म होने से पहले ही वह रुपया भी खत्म हो गया था। अत्याचार से तंग आकर बहुत-सी प्रजा अपने गाँव-खेत छोडकर नेपाल की तराई मे जा बसी थी।"[७] 'वयिदसा' उपन्यास मे श्रीवास्तव कहते हैं कि इन फिरंगियो ने भी भारत का भरपूर आर्थिक शोषण किया है—"फिरंगियो ने कभी अपने गाँठ के पैसो से भारत मे युद्ध नही किए। वे सदैव 'मियाँ की जूती मियाँ का सिर' वाली कहावत अक्षरशः चरितार्थ करते थे। सबसे मोटी और सबसे तायदाद मे ज्यादा

---

१ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ११०
२ वही, पृ० २००
३ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १३३
४ वही पृ० १२८
५ वही, पृ० १२७
६ हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन, पृ० ३८२
७ सोना और खून (भाग १)—आचार्य चतुरसेन, पृ० २०५

अडा देने वाली मुर्गी थी अवध की नवाबी।"[1] धन का प्रलोभन देकर उच्च वर्ग के लोग अपने गुलामो से अकृत्य भी करवाते थ। 'शाह और शिल्पी' उपन्यास मे विमलदेव को मरवाने के लिए षड्यन्त्र रचा जाता है—'थोडे से धन के लालच मे उन षड्यन्त्रकारियो के हाथो मे बिका हुआ गुलाम मल्ल सोच रहा था कि बडे-बडे मल्ल उसके सामने टिक नही पाते तो यह वणिक विमलशाह क्या टिक सकेंगे ?[2] 'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास मे नारी का आर्थिक आधार पर शोषण नानाविध किया गया है—"नारी को अपने सम्बन्ध म निर्णय लेने का अधिकार न था। वह पूर्णत अपने पति की सम्पत्ति मानी जाती थी। पति उसको धन के लोभ मे पर-पुरुष के पास भेज सकता था।"[3] 'अमृत पुत्र' मे सग्रामसिंह के अर्थ-शोषण का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने कहा है—"मैंने गरीब किसानो और श्रमिको की बात सुनी है। वे बतलाते हैं कि किस प्रकार गाँव-गाँव मे राज्य के कारिन्दे भेजकर यह सग्रामसिंह उनसे एक न एक बहाने से नित्य ही धन वसूल करता है। किसी के पास खाने के लिए भी हो या नही, पहनने के लिए वस्त्र भी हो या नही, किन्तु कुँवर पछेडा ता देना ही होगा—क्या यह न्याय है ? कौन इसे नीति की बात कहेगा ? यह सरासर अनीति और अन्याय है और इसे मैं जीवित रहने देन वाला नहीं हूँ।"[4] उपन्यास मे धन को सबसे बडा कुल बताया गया है। कुलीन सुन्दरी का सहवास धन उपलब्ध करा देता है—"वेश्या अपना अस्तित्व देती है और पाती है केवल द्रव्य, परन्तु पराश्रिता कुलवधू अपने समर्पण के मूल्य मे दूसरे पुरुषो को पाती है।"[5] इस विलासी कृत्रिम जीवन मे नारी को न तो आत्म-सतोष मिलता है न वह अपना स्वाभाविक धर्म ही पूरा कर सकती है— मैं इस जीवन से ऊब गई हूँ। अशुक और मोती-मानिक से भरी हुई देव-प्रतिमा मैं बनना नही चाहती। चाहती हूँ जीवन का उष्ण स्पर्श, जागृति का काँपता हुआ स्वर, एक तरह उन्माद, एक सर्वग्राही तितीक्षा। धन और ऐश्वर्य से उत्पन्न अवसाद मुझे नही चाहिए।"[6] मणिमाला के चरित्र के माध्यम से आर्थिक शोषण की विकृतियो को उभारा गया है। इस प्रकार आर्थिक शोषण वर्गगत सघर्ष का प्रमुख कारण बनता है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार

राजनीतिक भ्रष्टाचार के अन्तर्गत अनेक सामाजिक अपराध सम्मिलित हैं,

---

१ वन्दिता—प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ० १४
२ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ८२
३ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० ६५३ ६५४
४ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल पृ० ११३
५ दिव्या—यशपाल, पृ० १४३
६ जय वासुदेव—रामरतन भटनागर, पृ० ११४

यथा—चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, रिश्वतखोरी आदि। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में कुमार भट्ट से कहते हैं—"राजनीति भुजंग से भी अधिक कुटिल है, असिधारा से भी अधिक दुर्गम है विद्युत्शिखा से भी अधिक चंचल है। तुम्हारा और भट्टिनी का यहाँ तब तक रहना उचित नहीं है, जब तक कि अनुकूल अवसर न आ जाए।"[1] 'वैशाली की नगरवधू' में सेट्ठिधनिया ने "चम्पा के बहुत से सार्थवाहों की हुंडियाँ मेरे आदेश से खरीद ली हैं। वैशाली के दिन प्रभात में ही वे भुगतान माँगेंगे। मैं जानता हूँ मेरे पास राजकोष में स्वर्ण नहीं है। महाराज दधिवाहन मेरे रत्नों के मूल्य में जो स्वर्ण देंगे वह चम्पा के स्वर्ण-वणिकों से लेकर। बस वे खाली हो जायेंगे और नगरसेठ की हुंडियाँ नहीं भुगता सकेंगे।"[2] फलतः इस राजनीतिक कुचक्र का परिणाम उल्टा ही हुआ। राजनीतिक कुचक्रों ने वर्गगत संघर्ष की परिस्थितियों को उत्पन्न किया। 'महाकाल' उपन्यास में राज्यकोष के घोटाले का विवेचन किया गया है, जो राजनीतिक भ्रष्टाचार का ही एक अंग है—"मातृगुप्त ने महासचिव से पूछा 'राज्य भोग कोष' किस मंत्री के अधीन है?' अब इस कोष को विघटित कर दिया गया। महाराज मेघवाहन और प्रवरसेन के काल में कोष चलता था। महाराज हिरण्य के काल में यह कोष समाप्त कर दिया गया था और तब से राज्य-सहायता अपने-अपने विभाग के मंत्री देते हैं और उनका वितरण उनके विभाग का खर्चा समझा जाता है।'[3] 'शाह और शिल्पी' उपन्यास में राजनीतिक कुचक्रों का वर्णन हुआ है जब विमलशाह की माँ कहती है—'सोलंकी भोला है तो मेरे बेटे के प्राण लेने के लिए नहीं है। मान लिया कि आज राजा का संदेह दूर हो गया किन्तु क्या ये साँप के बच्चे उन्हें शान्त बैठने देंगे? मैं इन लोगों को तेरे पिता के समय से जानती हूँ बेटा! ये सदा ही योग्य आदमी से जलते हैं और उसके विरुद्ध षड्यंत्र करते रहते हैं। हमें ऐसे षड्यंत्रकारियों व हत्यारों के बीच नहीं रहना और नहीं करनी है ऐसे राजा की सेवा जो सच झूठ को भी नहीं पहिचान सके।"[4] विमलशाह पर खजाने के रुपये हड़पने का आरोपण लगाया गया—"सत्य तो यह था कि विमलशाह की ओर राज्य की एक पाई भी नहीं थी। यह सारा षड्यंत्र उन ईर्ष्यालु लोगों द्वारा रचा गया था जो उसको अपने मार्ग से हटा देना चाहते थे।"[5]

'जमानी ड्योढ़ी' उपन्यास में रानी ने रमणलाल से कहा कि—'दीवान

१ बाण भट्ट की आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १२८
२. वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १७२
३ महाकाल—गुरुदत्त, पृ० ६७
४ शाह और शिल्पी—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ७७
५ वही, पृ० ८८

रमणलाल ! आपने मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करके अत्यन्त ही जघन्य कार्य किया है। आपकी कृतघ्नता असह्य है। फिर मैं आपको चेतावनी देती हूँ कि मेरा यह पतन अकेले ही पतन नहीं होगा, मुझसे पहले आपका पतन होगा।"[1] यह कामदार लक्ष्मी का वाहन है। यह धन से इस तरह चिपका रहता है जैसे जोंक। इसने ड्योढ़ी की एक-एक औरत का शोषण किया है। यह एक रुपय से लेकर हजार रुपये तक की घूस खाता है। आयी हुई लक्ष्मी को कभी नहीं ठुकराता। तुम एक पैसा दो वह हँसकर ले लेगा। कहेगा—आयो जितरो ही चोखो। फिर माथे पर बल डालकर पूछेगा—आप राजी खुशी सूं देवो हो ना? तब इसके चेहरे पर बेहयाई की एक परत उभर आती है।"[2] ये बिचारी दावड़ियाँ, गोलियाँ और घाघरेवालियाँ तो सिर्फ रानियों की जूठन पर जीवित हैं। वे खुद ऐय्यासी की जूंठन हैं और जूंठन ऐय्यासी को ललचाती हैं। ड्योढ़ियों में हुए अत्याचार तथा भ्रष्टाचार का दृश्य और कहाँ मिलेगा—"शाम हो गई, मदिरा के पात्र और मुर्ग घृत मसालों से बना मांस बड़ी बड़ी रानियों, परदायतनों तथा पासवानों के महलों में पहुँचाया जाने लगा। उपेक्षित दावड़ियाँ, गोलियाँ और घाघरेवालियाँ अपने-अपने हिस्से की बाजरी की सूखी रोटियाँ और दाल ले रही थी।"[3]

'जुलेटा' की यन्त्रणा को तो समस्त इतिहास जानता है—'शिकंजे की सजा का तात्पर्य अपराधी के शरीर को पीड़ा दे-देकर खींचना, फैलाना और तोड़ना होता था।'[4] 'ये दिन ऐसे थे जबकि स्थल पर निरन्तर खून खराबियाँ होती रहती थी और जल में डकैतियाँ। ऐसे काम राजनीति के अंग ही माने जाते थे।'[5] 'वयं रक्षाम' उपन्यास में भी राजनीतिक अत्याचारों का विवेचन हुआ है। अपनी रक्ष संस्कृति के प्रचार के लिए रावण ने धर्म को त्याग दिया। 'कृष्ण-यजुर्वेद' नामक ग्रन्थ में धार्मिक अनुष्ठान के अन्तर्गत शिश्नपूजन, गोवध, नर-वध, कुमारीवध को सम्मिलित कर लिया गया था—"इसके अतिरिक्त मांस भक्षण और प्राणिवध के साथ साथ मद्यपान एवं स्त्रीगमन भी विहीत कर दिया। वह जहाँ कहीं भी जाता था एक स्वर्णलिंग साथ ले जाता था, उसे बालू की वेदी पर स्थापित कर पूजा करता था। इतना ही नहीं उसने बलपूर्वक वैदिक अनुष्ठानों को आसुरी ढंग पर करने के अनेक उपाय किए—उसने सहस्रों राक्षसों को यह आदेश दिया कि जहाँ कहीं आर्यऋषि रावण विरोधी विधि से यज्ञ कर

---

१ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० १५१
२ वही, पृ० ४२-४३
३ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' पृ० ४३
४ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १५
५ वही, पृ० ६७

रहे हो वहाँ बलपूर्वक बलि, मांस और मद्य की आहुति दो।"[1] उसने अपनी संस्कृति के प्रचार के लिए अनेक अत्याचार किए—"उसने राक्षसों द्वारा यज्ञ-कर्ता ऋषियों को ही मार कर बलि देना आरम्भ कर दिया। नर-भक्षण उसका और उसके अनुयायियों का व्यापार हो गया था।"[2]

रोमन साम्राज्य में कत्लेआम का धन्धा खूब चला। सोलहवीं शताब्दी में रोमन साम्राज्य कैथोलिक और प्रोटेस्टों में बँटा हुआ था। फिलिप द्वितीय जब नीदरलैण्ड का राजा हुआ तो उसने अनेक अत्याचार किये। नीदरलैण्ड का गवर्नर तो एक घोर निर्दयी पुरुष था। उसने "एक खूनी मजलिस स्थापित करके हजारों को जीता जला दिया या फाँसी के घाट उतार दिया। उसने नीदरलैण्ड के सारे निवासियों को ला-मजहब कहकर कत्ल करवा डाला था। इस प्रकार तीस लाख स्त्री-पुरुष कत्ल कर दिए गये थे।"[3] 'शतरंज के मोहरे' उपन्यास में अंग्रेजों की लूट का चित्रण किया गया है—'गाजीउद्दीन को बादशाह बनाने के लिए कम्पनी सरकार और कुछ भी नहीं चाहती थी, फकत दो करोड़ रुपया उधार माँगती थी। लेकिन गाजीउद्दीन बच न सके। पहले उन्होंने एक करोड़ रुपया देना मंजूर किया, फिर पचास लाख और स्वीकार किया किन्तु अंग्रेज दो करोड़ से कम लिए बिना नहीं माने।"[4] 'अंग्रेजों को तो हड़पने की हविस थी ही—इन सब बड़े लुटेरों से आये दिन दबायी जाकर अवध की प्रजा हर तरह से त्रस्त हो उठी थी। रुपया लूटने के हर छोटे से छोटे मौके पर अंग्रेजों की नजर रहे इस-लिए एक अंग्रेज रेजिडेंट भी लखनऊ में नियुक्त कर दिया गया जो छोटे से छोटे मामलों में हस्तक्षेप करता था।"[5] वेश्यागमन उन दिनों एक फैशन-सा बन गया था।" खानगी रण्डियों की दल्लालों का बड़ा मान था। बाजार कीमती सामानों से पटे पड़े थे, अमीरों की कोठियों और शाही महलों में ही उनकी खपत थी इसलिए रिश्वत का बोलबाला था। रिश्वत में रुपये, जवाहरात और खूबसूरत स्त्रियों की चारों तरफ माँग थी। कुटनियाँ भले घरों की लड़कियाँ-औरतों को उड़ाती थीं और बेचती थीं। इसलिए ठगी और लूटपाट का बोल-बाला था।"[6] 'वचन का मूल्य' उपन्यास का गुलाम कादिर सचमुच में ही घोर षड्यन्त्रकारी था—"जल्लादों की सारी मनोवृत्तियाँ उस उत्तराधिकार में मिली

---

१ वय रक्षाम—आचार्य चतुरसेन पृ० १६६
२ वही, पृ० १६३ १६४
३ सोना और खून (भाग २)—आचार्य चतुरसेन, पृ० १०३
४ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० ८८
५ वही, पृ० ८६
६ शतरंज के मोहरे—अमृतलाल नागर, पृ० ११६

थी। यह भी ठीक अपने पिता की ही भाँति बल्कि कई बातो मे उससे भी अधिक राज्यलोलुप, निर्दयी, विश्वासघाती और षड्यन्त्री था।[1]

इस प्रकार राजनीतिक भ्रष्टाचार एव शोषण की समस्त प्रक्रियाओ का उल्लेख करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासो मे यह बताया गया है कि इस प्रकार के अत्याचार राज्यलिप्सा, यौन विकृतियो तथा ऐय्याशी प्रवृत्तियो के कारण ही होते थे। पर पीडा मे सुख का अनुभव करना राजा-महाराजा, ठाकुर-वर्ग का एक स्वभाव बन गया था। सुरा और सुन्दरी दो ही उनके प्रमुख विषय थे। फलत शोषित एव आक्रान्त वर्ग अपनी मुक्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था। इन्ही प्रयत्नो के फलस्वरूप सघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न हुई और वर्गगत सघर्ष हुए।

मूल्यगत सक्रमण

बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे ही शिक्षा के प्रचार के कारण मानवीय आचार-विचार, रीति रिवाज और मूल्या-मान्यताओ मे नए पुराने का द्वन्द्व शुरू हो गया।" पुराने विश्वासो और रूढियो के वातावरण मे नए विचारो ने कही न कही और किसी न किसी प्रकार अपने को प्रतिष्ठित करना शुरू किया।"[2] सामाजिक मूल्य हमारे जीवन के लिए इस कारण महत्त्वपूर्ण हैं क्योकि यही मूल्य निश्चित करते हैं कि समाज के लिए क्या महत्त्वपूर्ण है, किस वस्तु को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए तथा किनसे बचना चाहिए। दूसरे शब्दो मे समाज के मूल्य ही उसके अधिमान (Preferences) और अस्वीकृत आचार (Rejections)होते है। हर समाज मे बहुत-से मूल्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण नही होते।"[3] मानव का इतिहास परस्पर-विरोधी तथ्यो के सघर्षों का इतिहास है। सारहीन तथा कुत्सित परम्पराओ तथा रूढियो के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हुए उन्हें त्याग देना उचित ही है—"सामाजिक परिणति की दृष्टि से मार्क्स ने निश्चय ही मानव के किन्ही शाश्वत मूल्यो को स्वीकार नही किया। पर साहित्य और सस्कृति को केवल बाह्य उपलब्धियो के रूप मे स्वीकार भी मार्क्स, एंजिल्स और एक सीमा तक लेनिन भी साहित्य के स्थायी तत्त्व को अस्वीकार नही कर सके।"[4] कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ मूल्य विघटित हो जाते हैं तथा कतिपय मूल्य सक्रमणावस्था के पश्चात ही नवीन रूप धारण कर लेते हैं। प्राचीन एव नवीन मूल्यो की स्वीकारोक्ति तथा अस्वीकृति म सघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो वर्गगत सघर्ष को जन्म देती हैं।

१. वचन का मूल्य—प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ० ७६
२ हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष—ओकारनाथ श्रीवास्तव, पृ० ३९
३ सामाजिक समस्याएँ और सामाजिक परिवर्तन—डा० राम आहूजा, पृ० ३६
४ साहित्य नया परिप्रेक्ष्य—डा० रघुवश, पृ० १६

वैशाली गणतन्त्र के धिक्कृत कानून के कारण राज्य की सबसे सुन्दर कन्या को नगरवधू बनना पड़ता था। उस समय यह एक स्वीकृत सामाजिक मूल्य था, किन्तु वैशाली की नगरवधू घोषित होने पर वह कन्या कुलवधू के अधिकारों से वंचित हो जाती थी। इस परम्परा का विरोध करना उस समय सम्भव नहीं था। अम्बपाली कहती है—'आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश करते हैं वह एक बार नहीं—लाख बार धिक्कृत होने योग्य है।"[१] विभिन्न प्रचलित मूल्यों के कारण भी निरन्तर शोषण होता रहता है। इसी मूल्यवत्ता के प्रतिशोध में वह— 'महाराजा बिम्बसार से अपने सौन्दर्य का सौदा कर बैठी।"[२] 'महाराजा बिम्बसार इसी कारण वैशाली पर आक्रमण करते हैं।'[३] अत: मूल्यों की विवेचना, शोषण के विरुद्ध एक आवश्यक प्रक्रिया बन जाती है। वर्गगत चेतना के आधार पर मूल्यों में परिवर्तन हो सकता है। यह संघर्ष द्वारा ही हो सकता है।

'पुनर्नवा' में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परम्परागत प्रचलित मूल्यों में से नारी के शील गुण का विवेचन किया है। मृणाल के हृदय में प्रचलित मान्यताओं एवं व्यावहारिक क्षेत्र में उनके क्रियान्वन का द्वन्द्व चलता रहता है। वह वर्गगत चेतना से परिपूरित हो पिता से कहती है—'दिन-दहाड़े प्रजा की सम्पत्ति लूटी जा रही है, बहू-बेटियों का शील नष्ट किया जा रहा है। आपकी यह अभागिन कन्या क्या इस समय कुछ नहीं कर सकती?"[४] उसके पिता भरसक प्रयत्न करते हैं कि उसकी बेटी पर अनाचार की छाया न पड़े। वे हतबुद्धि होकर विचार करने लगे—"ऐसी लड़कियाँ इन बातों में क्या सहायता कर सकती हैं? बेटियों की शील-रक्षा का भार पुरुषों पर है। तुझे मैं कौन सा काम दे सकता हूँ? तू तो जो सम्भव है सब कर ही रही है। दीन दुखियों की सेवा करना, उनके भीतर आत्मबल संचारित करना।"[५] स्पष्टतः यहाँ नारी को स्वावलंबी बनाने की बात कही गयी है।

मूल्यगत परिवर्तन के कारण ही 'विराटा की पद्मिनी' का कुंजर विचार करता है—"मेरा इतिहास व्यथापूर्ण है, मेरे साथ बड़ा अन्याय हुआ है।"[६] इसी उपन्यास की कुमुद व गोमती कहती हैं—'हम दोनों अत्याचार-पीड़ित स्त्रियाँ एक स्थान पर शान्ति के साथ रहना चाहती हैं, वह भी तुम्हें सहन नहीं। हमारा

१ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० २०
२ वही पृ० ३५६-३५८
३ वही पृ० ७३१-७३४
४ पुनर्नवा—हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३८
५ वही, पृ० ३९
६ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २७६

राज्यपाट ले लिया और दोनो को एक-दूसरे से अलग करके क्या किसी एकान्त गढ़ी म हमारा सिर कटवाओगे ?"[1] इसी कारण—"अन्तिम मुगल सम्राटों के थपेडा ने जो भयकर लहर भारतवर्ष मे उत्पन्न कर दी थी उसने क्रान्ति उपस्थित कर दी।'[2] अनेक आक्रमणकारी जातियो के भारत मे घुस आने से उनकी विचारधारा का यहाँ के निवासियो पर जो प्रभाव पड़ा, उससे अनक नये मतो का प्रादुर्भाव हो गया था। महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने दृढ स्वर म कहा था कि यदि अत्याचार, शोषण अपनी पराकाष्ठा पर नही पहुँचते तो सभवत पुण्य-मूर्तियो की इतनी दूर आने की आवश्यकता ही नहीं होती।"[3] स्पष्ट है कि मूल्यगत परिवर्तन समाज मे नवीन क्रान्ति को जन्म देता है। क्रान्ति के द्वारा ही व्यवस्था परिवर्तन का कार्य सम्पन्न होता है।

प्राचीन लिच्छवी-गण के राज्य मे दासो का क्रय-विक्रय होता था तथा स्वामी का उन पर पूर्ण आधिपत्य होता था। ये सामन्त स्त्रियो पर मनमाना अत्याचार करते थे—"मिसकाली ने अनेक स्त्रियो के साथ सामन्तों को इसी प्रकार बलात्कार करते देखा था किन्तु राज्यश्री के अनुपम सौन्दर्य और गाम्भीर्य ने उनके हृदय मे एक टीस-सी जगा दी थी।"[4] 'इतनी सुन्दर का दरिद्र होना तो और भी भयानक है। पुरुष बड़ा लोलुप और स्वार्थी होता है।'[5] सामन्तो की मनोवृत्ति के आधार पर प्रचलित परम्पराओ का मूल्याकन किया जा सकता है—"अपने राज्य की किसी भी स्त्री को बलात् या गुप्त रूप से उठा लाना सामन्तो के बायें हाथ का खेल हो चला था। किसी किसी कामुक सामन्तो का तो यह नियम सा बन गया था कि कोई नववधू अपने पति से पहले सामन्तदासी बनती थी और दासी के अपने ऊपर कोई अधिकार नही थे।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि निरन्तर शोषण के कारण भारत की गुलामी के इतिहास मे सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्न होते रहे— 'पजाब मे गदर पार्टी, बगाल मे अनुशीलन और युगान्तर सगठनो, महाराष्ट्र मे चापेकर बन्धुओ और मद्रास मे रामराव दलों द्वारा सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा किसी न किसी रूप म सदा ही जीवित रही है। देश के नवयुवको के हृदय मे विदेशी दासता से मुक्ति की इच्छा का सूत्र कभी भी निर्मूल नही हुआ, परन्तु इन प्रयत्नो के प्रकट विद्रोह निरन्तर शृखला के रूप म न होकर देशकाल की परिस्थितियो के अनुसार जहाँ-तहाँ

१ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १३८
२ वही, पृ० ४३
३ चीवर—डा० रांगेय राघव, पृ० १०४
४ वही, पृ० ४१
५ वही, पृ० ७७
६ वही, पृ० ११

सीमित रूप मे बने रहे हैं।"[1] अस्तु, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूल्यगत परिवर्तन के कारण विभिन्न परिस्थितियाँ, विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रचलित परम्पराएँ और राजनीतिक शोषण की प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर रही हैं। नारी के हित-चिन्तन तथा शोषण से मुक्ति दिलाने मे मूल्य-परिवर्तन की प्रक्रिया का पूर्ण हाथ रहता है। वस्तुत मूल्यगत सक्रमण वर्गगत सघर्ष का ही परिणाम है। वर्गगत चेतना का निरन्तर विकास वर्ग-सगठन को प्रेरणा देता है। आज के समाज म वर्गविहीन सामाजिक व्यवस्था का प्रादुर्भाव इन्ही मूल्यो के परिष्करण के फलस्वरूप हुआ है।

सास्कृतिक पतन

सास्कृतिक पतन की ओर दृष्टिपात करते समय हमे—"अपने सास्कृतिक विचारो और सामाजिक आचारो पर दृष्टिपात करना होगा और यह देखना होगा कि यहाँ के अपना पुराना भाव या अपना सच्चा अर्थ खो चुके हैं। उसमे से बहुतेरे तो आज एक मिथ्यावस्तु बन गए है।"[2] मिथ्या मान्यताओ को तिलाजलि देना ही सास्कृतिक दृष्टि स एक गहन समस्या है। मार्क्स का अनुमान है कि जब तक कोई वर्ग या समूह प्रगति के मार्ग पर गतिशील रहता है तभी तक उसकी सस्कृति भी प्रगतिशील रहती है। प्रगति म जब शिथिलता आने लगती है तब सस्कृति भी शिथिल एव मूल्यहीन हो जाती है। 'वह यह मानता है कि कम उन्नत युग के उत्पत्ति साधन अधिक उन्नत युग के उत्पत्ति-साधनो द्वारा स्थानच्युत कर दिए जाते हैं।'[3] सास्कृतिक विकासक्रम म जो मूल्य शिथिल एव अप्रगतिगामी हो जाते हैं, नवीन सस्कृति उन्हे स्थानच्युत कर देती है। इस अवस्था को हम सास्कृतिक पतन की स्थिति कहते हैं। "सस्कृति सामाजिक आवश्यकताओ द्वारा जनित मानव-आविष्कार है। मनुष्य सस्कृति मे जन्म लेता है सस्कृति सहित जन्म नही लेता।"[4] जब कोई भी सास्कृतिक परम्परा शोषण का रूप धारण कर लेती है तो पतनोन्मुख हो जाती है।

वीर्यदान की परम्परा आज विलुप्त हो चुकी है, किन्तु किसी समय इस परम्परा का सास्कृतिक महत्व था। 'आज का युग प्रत्येक वस्तु म प्रामाणिकता की माँग करता है। उसकी दृष्टि से वही सत्य स्वीकार्य है, जिसकी परीक्षा की जा सके। आज तर्क की प्रधानता है जो निश्चय ही मनुष्य की बौद्धिकता की उपज है।"[5] सास्कृतिक चेतना की प्रौढता तथा प्राचीन सस्कृति की जानकारी

---

१ सिंहावलोकन—यशपाल, पृ० १७
२ भारतीय सस्कृति के आधार—श्री अरविन्द, पृ० ४७
३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० १०
४ मानव और सस्कृति—श्यामाचरण दुबे, पृ० १७-१८
५ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन—डा० रमेश तिवारी, पृ० १८ १९

प्राप्त करने का एकमात्र साधन ऐतिहासिक विवेचन ही है। सस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के सस्कारो से अनिवार्यत होता है। इन सस्कारों का परिष्करण ही मानव-विकास का इतिहास निर्माण करता है। सस्कृति का सम्बन्ध धार्मिक आदर्शों से जोडकर अनेक कुपरम्पराओ का प्रचलन हुआ है। दासी-प्रथा पर व्यग्य करते हुए कचनार कहती है—"हम दासियो के माँ बाप या नातेदार जब राजकुमारियो के साथ हमे लगा देते हैं तब भाड मे तो हम यो ही फेंक दी जाती हैं। जब राजा लोग दासियो की देह का सर्वनाश कर चुकते हैं, तब मानो उनकी राख घूरे पर फेंक दी जाती है।"[1] यह नारी की वर्गगत चेतना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। नारी चेतना ने ही शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर वर्गगत सघर्ष को जन्म दिया। देवदासी-प्रथा को भी सास्कृतिक परम्परा का रूप दिया जा चुका था। अनेक वर्गों की नारियाँ इन देवदासियो मे सम्मिलित थी—'एक लडकी को एक रुद्रगोपिका वर्ग की देवदासी अपने घर ले गई थी और दूसरी को मन्दिर की एक 'मुख्या' देवदासी।'[2] इन देवदासियो मे 'दत्ता' और 'हृत्ता' वर्ग भी प्रचलित थे। मन्दिर की देवदासी को जब दत्ता के रूप मे स्वीकृत किया तो सबने आपत्ति उठाई क्योकि—"*उनका कहना है कि नई देवदासी स्वेच्छा से देव सेवा मे अर्पित करने नही आई, इसलिए वह दत्ता-वर्ग की देवदासी नही मानी जा सकती, वह उडाई गई है, इसलिए उसकी गणना हृत्ता-वर्ग मे की जायेगी*।'[3] अत इस परम्परा मे भी वर्ग-सघर्ष विद्यमान था। ऊँच-नीच का भेदभाव इनमे भी निरन्तर बना रहा। यह परम्परा यदा-कदा प्रतिलक्षित होती है। एक अन्य परम्परा के अनुसार सुहाग के नूपुर विवाह के समय दिए जाते थे। 'ऊजली' उपन्यास म धार्मिक परम्पराओ एव आदर्शों के आधार पर ऊजली जेठवा की प्राणरक्षक बनती है। वह उस आत्म-समर्पण करती है और कहती है कि—"सकट काल म मर्यादाए स्वय टूट जाती हैं। मनुष्य परिस्थितियो का दास है।"[4] इस प्रकार ऊजली आदर्श और कर्त्तव्य के झूले म झूल जाती है। गर्भवती होने पर उसे राजा जेठवा से पत्नी के अधिकार भी प्राप्त नही होते। पुरुष की उन्मुक्त प्रकृति को प्रत्येक सस्कृति मे स्वीकारा गया है। इसका उल्लेख 'मुर्दों का टीला' नाम उपन्यास मे इस प्रकार हुआ है—"कहाँ की रीति है कि पुरुष एक ही स्त्री से बँधा रहे? कहाँ है ससार मे ऐसा नियम? यदि यह पाप था तो धार्मिक पुजारियों ने उसकी प्रशसा क्यो की थी? यह

---

१ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १०८
२ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर, पृ० ३२
३ वही, पृ० ३३
४ ऊजली—ललितकुमार आजाद पृ० ५३

ठहाकर सूठ है। मनिवद इन्हीं का दास बनकर नहीं रह सकता। यह उपयुक्त है।"[1]

वस्तुतः सांस्कृतिक धरातल परम्परा और प्रयोग के मध्य का संघर्ष है। जो मान्यताएँ अस्वीकृत हो जाती हैं वे समाज के द्वारा अमान्य हो जाती हैं और त्याग दी जाती हैं। प्रत्येक नयी सांस्कृतिक मान्यता पुरातनवादी दृष्टिकोण को ध्वस्त करके ही अपना विस्तार करती है। ऐतिहासिक उपन्यासों में इन तथ्यों को भलीभाँति उजागर किया गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में साम्यवादी चिन्तन का स्वरूप

श्री राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में साम्यवादी चिन्तन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। राहुल जी के तीन उपन्यासों में मार्क्स तथा बुद्ध की विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करने का उपक्रम किया गया है। अपने उपन्यास 'जय यौधेय' में उन्होंने संगठित शक्ति की प्रेरणा दी है—"हमने जब खेती और अपने हाथ से काम करना शुरू किया था, तब इतना नहीं समझ सके थे कि यह हमारे जीवन में कितना परिवर्तन कर देगा। सब से बड़ा परिवर्तन तो हमारे दासों और मजदूरों ने देखा।"[2] साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप सन्देश देते हुए वे कहते हैं—"हमारे गणतन्त्र में राजा, रनिवास और उनके सामन्तों के सामने सिर रगड़ना अपमानित होना और उनके आनन्द के लिए सारी दीनार प्रजा के मुँह से छीनकर लेने की आवश्यकता नहीं रहती, उसी तरह यदि हम अपनी खेती, बाड़ी-बगीचे, शिल्प व्यापार को साझे में करते तो धनी-गरीब का भेद नहीं होने पाता। दूसरे की कमाई लूटकर दूसरों को गरीब बना कोई धनी नहीं बनता।"[3] 'पतन' उपन्यास में भी साम्यवादी विचारों का प्रसार किया गया है।

यशपाल जी मार्क्सवादी विचारधारा के सर्वोपरि लेखक हैं। वे साम्यवादी विचारधारा का निरूपण इस प्रकार देते हैं—"सामन्तगण तात्कालीन परिस्थिति से लाभ उठाकर अपनी शक्ति और अपना धन बढ़ाने की घात करते हैं और संकट तभी टलता है, जब पुरानी परिपाटियों को उखाड़कर सारे गण के जनों को समान अधिकार दे दिये जाते हैं।"[4] यह धारणा कि विरोधी वृत्तियों का संघर्ष परिवर्तनों की प्रेरणा शक्ति है, बहुत प्राचीन है। अतः वर्ग-संघर्ष मार्क्सवादियों का लक्ष्य नहीं है, साधन मात्र है। मार्क्सवाद पूँजीपति-वर्ग के आधिपत्य की जगह सर्वहारा-वर्ग के आधिपत्य के लिए नहीं लड़ता, वह वर्ग-विभाजित

---

१ मुर्दों का टीला—डा० रांगेय राघव, पृ० २४१
२ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २७६
३ वही, पृ० १५६-१६०
४ हिन्दी उपन्यास में नारी-चित्रण—डा० बिन्दु अग्रवाल, पृ० ४०४

समाज की जगह एक वर्गहीन समाज लाने के लिए, एक वर्ग के शासन की जगह एक शासनहीन, राज्यहीन समाज लाने के लिए संघर्ष करता है। सर्वहारा-क्रान्ति का उद्देश्य सर्वहारा वर्ग का राज्य नही एक ऐसे समाज की नीव डालना है जिसमे स्वय सर्वहारा-वर्ग भी एक वर्ग के रूप मे समाप्त हो जाय।'[1] झाँसी की रानी' म हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश इसी विचारधारा के अनुरूप है। तात्या कहते हैं—"महाराष्ट्र की जनता अब भी स्वराज्य-मत है। दरिद्र और धनाढ्य, किसान और मजदूर तथा जागीरदार लगभग सब एक सकेत पर खड़े हो सकते हैं।"[2] 'कचनार' उपन्यास मे युद्ध के समय वर्ग-चेतना से अनुप्रेरित होकर सभी स्त्रियाँ हवेली मे एकत्रित होती हैं तथा शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए संगठित हो जाती हैं—"बड़े घरो की स्त्रियाँ हवेली के अन्त पुर मे इकट्ठी हो गई। सागर की सेना हिन्दू राजा की थी, इसलिए उनको अपनी पवित्रता के नष्ट होने का कोई भय नही था। एक कोठे म काफी बारूद भरी रखी थी। उस सकल्प वाली स्त्रियाँ इसका उपयोग कर सकती थी।"[3]

'अमृत पुत्र' उपन्यास मे वस्तुपाल संगठन की शक्ति द्वारा वर्ग-शोषण से मुक्त होने की प्रेरणा देता है तथा हिंसक क्रान्ति का प्रोत्साहित करता है—"यदि कोई अत्याचारी अन्धा होकर कर्म-कुकर्म करने लगे तो उसे जडमूल से विनष्ट कर देना ही हमारा धर्म बन जाता है और उसमे हमारी अहिंसा आडे नही आती।"[4] साम्यवादी विचार-दर्शन की धारणाओं का प्रचार-प्रसार करते हुए राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं कि शोषण से मुक्ति का मार्ग समता पर आधृत व्यवस्था मे है—"इसी तरह इस दुनिया स दु खो के दूर करने के लिए मनुष्य-मात्र मे समता—भोगो की समता, कामो की समता स्थापित करना ही एक मार्ग है।''''''मनुष्य जब भी व्यापक सुख की चिन्ता करेगा, वह इसी निश्चय पर पहुँचेगा कि सबके सुखी होने पर ही हम सुखी रह सकते हैं। मैं और मेरा खयाल छोड़ विश्व को एक कुटुम्ब बना उसमे समता की स्थापना ही सारे रोगो की दवा है।"[5] 'विस्मृत यात्री' मे प्रगतिवादी चिन्तनधारा के अनुरूप कहा गया है—"गुरु का कहना था कि केवल सम्पत्ति मे ही मेरा-तेरा का भाव बुरा नही बल्कि विवाह भी मेरे-तेरे के भावो को पैदा करके अपनी सन्तान के प्रति पक्षपात का कारण होता है। सारा देश तब तक एक कुटुम्ब नही बन सकता, जब तक

---

१ लिटरेचर एण्ड रिवोल्यूशन—लिओन त्रात्स्की, पृ० १६७
२ झाँसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० १८३
३ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा पृ० ६४
४ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ११३
५ मधुर स्वप्न—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २८२

विवाह-प्रथा मौजूद है।"[1] 'बाण भट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में लेखक अनजाने ही साम्यवादी विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं —'क्या संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु इसी प्रकार अपमानित होती रहेगी ? मेरा मन कहता है कि जब तक राज्य रहेंगे, सैन्य संगठन रहेंगे, पौरुषदर्प का प्राचुर्य रहेगा, तब तक यह होता ही रहेगा। परन्तु क्या यह सम्भव होगा कि मानव-समाज में राज्य न हो, सैन्य संगठन न हो, सम्पत्ति का मोह न हो ?'[2]

इसी प्रकार 'ठकुराणी' उपन्यास में शिव के विचारों में साम्यवादी चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई है—"पता नहीं शान्ति का कौन सा कदम इनके महलों और हवेलियों को धूल में मिला दे। भाइयो ! कोई आदमी जन्म से न छोटा होता है और न बड़ा। जीने का हक सबको बराबर है। किन्तु ये जो हमारे अन्नदाता हैं, ये हमसे जीने का हक छीनते हैं और हमें कुत्ते की तरह मरने के लिए मजबूर करते हैं। हमसे जानवरों की तरह काम कराते हैं, पर हमें जानवरों की तरह पेटभर भोजन नहीं देते। ये महान् हैं हमारे प्रभु हैं, लेकिन ऐसे प्रभुओं का जीवन शाश्वत नहीं है। ऐसे पुरुषों को अंधे होकर पूजना हितकर नहीं है। इनसे मुक्त होना ही पड़ेगा। इनसे एक दिन लड़ना ही पड़ेगा।"[3] "यहाँ धर्म के नाम पर पाखण्ड चल रहा है तथा युद्ध के नाम पर टुकड़े छीनने का पोषपन खेला जा रहा है।"[4] मानव द्वारा मानवता का घृणित शोषण समाज का क्रान्तिकारी-वर्ग कदापि सहन नहीं कर सकता। वह समाज में वर्ग-संघर्ष या क्रान्ति के द्वारा नवीन व्यवस्था का सूत्रपात चाहता है। ऐसी व्यवस्था जिसमें न शोषक होगा तथा न ही शोषित। 'ठकुराणी' उपन्यास में ठकुराणी कहती है—"मैं क्या करूँ ? मैं तुम्हारी तरह कुछ भी सहने को तैयार नहीं हूँ। मैं तुम्हारी तरह अपने-आपका शोषण नहीं करा सकती।"[5] यह भावना क्रान्तिकारी वर्गगत चेतना से ओतप्रोत है। 'मृगनयनी' उपन्यास में वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए सक्रिय कदम उठाते हुए महाराजा साहब ने प्रण लिया—"जब भवन और मन्दिर बनवाऊँगा तब मजदूरों के साथ नित्य एक घण्टे मैं भी पत्थरों पर श्रम करूँगा।"[6] इसी उपन्यास में मृगनयनी स्त्री-जाति को शोषण से मुक्ति के लिए सक्रिय कदम उठाती है—"जैसे युद्धों के बीच-बीच में दरिद्रों के लिए निवासगृह बनवाए जा रहे हैं, औषधालय खोले जा रहे हैं, वैसे ही एक काम

१ विस्मृत यात्री—राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३७१
२. बाण भट्ट की आत्मकथा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १४७
३. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० ११४-१२२
४ चारु चन्द्रलेख—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०४
५ ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ० २३४
६. मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १०९

यह सही। स्त्री तब तक अपने को दरिद्र समझती है, जब तक उसके सम्बन्ध में समाज मान्यता दे।'[१] 'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास में भी शोषक एवं शोषित वर्गों के विवेचन में वर्गगत चेतना परिलक्षित होती है जो मूलतः साम्यवादी विचारधारा का सन्देश प्रसारित करती है—"एक ओर ये सेट्ठियों की और महाराजाओं की गगनचुम्बी अट्टालिकायें हैं जो स्वर्ण-रत्न और सुखद साजों से भरी-पूरी हैं, दूसरी ओर ये निरीह और कर्मकर, शिल्पी और कृषक हैं जो अतिदीन-हीन हैं। क्या इन असंख्य प्रतिभाशाली, परिश्रमी जनों की भयानक दरिद्रता का कारण ये इन्द्रभवन-तुल्य प्रासाद नहीं हैं ?"[२]

'अमृत पुत्र' उपन्यास में भी क्रान्ति के द्वारा अत्याचारी के विरोध का प्रयास किया गया है—"जब कोई अत्याचारी अथवा हावर कर्म-कुकर्म करने लगे तो उसे जड़मूल से विनष्ट कर देना ही हमारा धर्म बन जाता है और उसमें हमारी अहिंसा आड़े नहीं आती।"[३] "एक भूखे आदमी पर पाशविक अत्याचार करने से पहले आपको कहीं जाकर डूब मरना चाहिए था। वह यवन है तो क्या मनुष्य नहीं है ? वह गरीब है तो क्या पशुओं से भी हीन हो गया ? धिक्कार है आपको और आपके उस धर्मभाव को जो आपको मानवता की नहीं स्वार्थ और नीचता की शिक्षा देता है।'[४] यशपाल जी ने 'दिव्या' उपन्यास में प्रगतिशील दृष्टिकोण के अनुरूप कहा है—"वे सामाजिक कुरूपताओं, प्राचीन जर्जर मरणोन्मुख समाज व्यवस्थाओं पर व्यंग करते हैं, उनका पर्दाफाश करते हुए नयी सामाजिक चेतनाओं को, जनशक्तियों को विश्वास देकर उद्घाटित करते हैं।"[५] इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकारों में सर्वश्री यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, हजारीप्रसाद द्विवेदी, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' प्रभृति की औपन्यासिक कृतियों से इस तथ्य की सम्पुष्टि होती है कि वास्तव में वर्ग-संघर्ष मार्क्सवादी चिन्तन का लक्ष्य नहीं वरन् साधनमात्र था। मार्क्सवाद मानवीय मुक्ति की गहनतम और उत्कट आकांक्षाओं को वैज्ञानिक ज्ञान एवं नवचेतना के अभ्युदय के साथ जोड़ता है। इस प्रकार वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था ही मानवता को शोषण से मुक्ति दिलाकर सच्ची शांति स्थापित कर सकती है।

निष्कर्ष

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्गगत चेतना का विवेचन करने के उपरान्त हम सहज इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

---

१ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३७७
२ वैशाली की नगरवधू—आचार्य चतुरसेन, पृ० १३३ १३४
३ अमृत पुत्र—ज्ञान भारिल्ल, पृ० ११३
४ वही, पृ० १६१
५ वृन्दावनलाल वर्मा—रामदरश मिश्र, पृ० २३

पर सामाजिक गतिविधियों का अंकन करते हुए अतीत की विवेचना की गई है। उपादेयता की दृष्टि से यह विवेचना आधुनिक समाज-व्यवस्था को भी प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती। डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में—"ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य शुष्क इतिहास को कथानक में गूँथ देने तक ही सीमित नहीं होता। उसे तत्कालीन शासकों की मनोवृत्ति, प्रजा की राजनैतिक व आर्थिक दशा, उस युग के साहित्य, संस्कृति और कला पर भी प्रकाश डालते हुए तत्कालीन वातावरण को सजीव रूप देने में उपस्थित करना पड़ता है।"[1] सर्वश्री यशपाल, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, आचार्य चतुरसेन प्रभृति उपन्यासकारों ने प्राचीन गणतन्त्रात्मक विधान को आधुनिक प्रजातांत्रिक व्यवस्था से जोड़ने का प्रयास किया है। यशपाल तथा राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों का स्वर मार्क्सवादी है। डॉ० रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'मुर्दों का टीला' में गणराज्य की गतिविधियों का विश्लेषण मार्क्सवादी दृष्टिकोण से किया है। विभिन्न प्रकार के शोषणों का विवेचन करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासों में विभिन्न परम्पराओं एवं संस्कृतियों का यथार्थपरक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरण के लिए—दास-दासियों के क्रय-विक्रय, जनानी ड्योढ़ियों में गोला-गोलियों की दयनीय दशा, वेश्यावृत्ति, दास-प्रथा, वीर्यदान-परम्परा, रक्ष तथा यक्ष संस्कृतियों की विसंगतियाँ, नवाबों की यौन विकृतियाँ, सामाजिक कुरीतियों के प्रचलन के कारणों, धार्मिक व नैतिक पतन, नारी के बहुविध शोषण, साम्प्रदायिक वैमनस्य तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार की पृष्ठभूमि की सतर्क व्याख्या की गई है। इन सभी समस्याओं के मूल में आर्थिक विषमता तथा आर्थिक शोषण प्रमुख कारण रहे हैं। शोषक तथा शोषित वर्गों की समस्याओं तथा मान्यताओं को उभारने में यशपाल जी ने इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टि से देखकर प्रतिबिम्ब में समाजवादी रंग भरने का उपक्रम किया है। डॉ० रांगेय राघव तथा राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में प्रगतिवादी तथा समाजवादी चिन्तन का उन्मेष है। उन्होंने अतीत का विश्लेषण मार्क्सवादी विचार-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में किया है। उन्होंने रूढ़िगत मान्यताओं पर कठोर प्रहार करके वर्तमान के सन्दर्भ में परिवर्तन की अपेक्षा की है। पुरातन तथा नवीन वर्गों की मान्यताओं में अन्तर के कारणों तथा संघर्ष की स्थितियों का भी विश्लेषण किया है। नारी-चेतना तथा शोषित वर्ग की वर्गगत चेतना को उभारकर वर्ग संघर्ष को प्रेरणा भी प्रदान की है। बौद्धकालीन गणतंत्रों के सामाजिक विधान की व्याख्या करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि उस काल में यौन वर्जनाओं तथा आर्थिक विषमताओं का क्या स्वरूप था। बौद्धमत के

---

१. हिन्दी साहित्य : समस्याएँ और समाधान—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० २८३

सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुए जातिवाद, दासता, आर्थिक शोषण आदि रूढ़िगत संस्कारों को त्याज्य बताकर नवचेतना का प्रसार किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो की सृष्टि समाजवादी विचारधारा एवं स्वतन्त्रता-आन्दोलन की समन्वित पृष्ठभूमि पर हुई है। सर्वश्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य चतुरसेन, वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' आदि ने अतीत की गौरव गाथा कहते हुए युगीन आदर्शों का निरूपण किया है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास सामाजिक चेतना की उपन्यास-कृतियो की शृंखला मे एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। अतीत को महिमान्वित करने का मोह उनकी रग-रग मे समाया हुआ है। 'दिव्या' मे चार्वाक की विवेचना मार्क्सवादी चिन्तन के समीप प्रतीत होती है। सभी उपन्यासो मे सामन्तवादी विसगतियो को उभारने का पूर्ण प्रयास किया गया है। सक्षेप मे, तत्कालीन परिस्थितियो, प्रवृत्तियो, समस्याओ एव विसगतियो के परिप्रेक्ष्य म वर्गगत चेतना के उदय और वर्गगत सघर्ष की प्रतिक्रियाओ को हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने नितान्त जीवन्त परिसन्दर्भों मे उभारा है।

परिशिष्ठ १

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

१ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य— डॉ० शुभकार कपूर
२ आज का हिन्दी साहित्य—प्रकाशचन्द्र गुप्त
३ आधुनिक राजनैतिक विचारो का इतिहास—डॉ० प्रभुदत्त शर्मा
४ उपन्यास, शिल्प और प्रवृत्तियाँ—डॉ० सुरेश सिन्हा
५ ए हिस्ट्री आफ पोलीटिकल थॉट—डॉ० प्रभुदत्त शर्मा
६ ऐतिहासिक उपन्यास 'प्रकृति एव स्वरूप'—डॉ० गोविन्दजी
७ नया साहित्य एक दृष्टि—प्रकाशचन्द्र गुप्त
८ भारत वर्तमान और भावी—रजनी पामदत्त
९ भारतीय सस्कृति के आधार—श्री अरविन्द
१० मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त— एल लियोन्तीव
११. मानव और सस्कृति—श्यामा चरण दूबे
१२ यशपाल का औपन्यासिक शिल्प—प्रोफेसर प्रवीण नायक
१३ लिटरेचर एण्ड रिव्योल्यूशन—एल त्रास्तकी
१४ वृन्दावनलाल वर्मा—डॉ० रामदरश मिश्र
१५ वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
१६ वृन्दावनलाल वर्मा—आचार्य बटुक
१७ समाज की आर्थिक व्यवस्था—एल लियोन्तीव
१८ सस्कृति और सास्कृतिक क्रान्ति—लेनिन ब्लादीमीर
१९ सामाजिक समस्याए और सामाजिक परिवर्तन—डॉ० राम आहूजा
२० साहित्य : नया परिप्रेक्ष्य—डॉ० रघुवश
२१ सोवियत सघ की कम्युनिष्ट पार्टी का इतिहास
२२ हिन्दी उपन्यास—डॉ० सुषमा धवन
२३ हिन्दी उपन्यास कला—डॉ० प्रतापनारायण टण्डन
२४ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—महेन्द्र चतुर्वेदी

२५ हिन्दी उपन्यास अन्तर्यात्रा—डॉ० रामदरश मिश्र
२६ हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण—डॉ० बिन्दु अग्रवाल
२७ हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा—डॉ० मक्खनलाल शर्मा
२८ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० रमेश तिवारी
२९ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—डॉ० त्रिभुवनसिंह
३० हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी
३१ हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक अध्ययन—डॉ० गणेशन
३२ हिन्दी की प्रगतिशील कविता—डॉ० रणजीत
३३ हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास—डॉ० कमल जौहरी
३४ हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी—नन्ददुलारे वाजपेयी
३५ हिन्दी साहित्य समस्याएँ और समाधान—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
३६ हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष—ओंकारनाथ श्रीवास्तव

परिशिष्ट २

उपन्यास-सूची

१ अमृतपुत्र—ज्ञान भारिल्ल
२ अमिता – यशपाल
३ ऊजली—ललित कुमार 'आजाद'
४ एक ही रास्ता—सुदेश रश्मि
५ एकदा नैमिषारण्ये—अमृतलाल नागर
६ कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा
७ गढ़ कुण्डार—वृन्दावनलाल वर्मा
८ गोली—आचार्य चतुरसेन
९ चारुचन्द्रलेख—हजारीप्रसाद द्विवेदी
१० चित्रलेखा—भगवतीचरण वर्मा
११ चीवर—डॉ० रांगेय राघव
१२ जनानी ड्योढ़ी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
१३ जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन
१४ जय वासुदेव—रामरतन भटनागर
१५ जय जगलधर बादशाह—धर्मेश शर्मा
१६ झाँसी की रानी—वृन्दावनलाल वर्मा

१७. ठकुराणी—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
१८. दिव्या—यशपाल
१९ धर्मपुत्र—आचार्य चतुरसेन
२० पतन—भगवतीचरण वर्मा
२१. प्रभावती—निराला
२२ पुनर्नवा—हजारीप्रसाद द्विवेदी
२३ बाणभट्ट की आत्मकथा—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
२४. मधुर स्वप्न—राहुल सांकृत्यायन
२५ महाकाल—गुरदत्त
२६ मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा
२७. मुर्दों का टीला—डॉ० रांगेय राघव
२८ रजनीगंधा—यज्ञदत्त शर्मा
२९. राणा सांगा—सत्य प्रकुन
३०. वन्दिता—प्रतापनारायण श्रीवास्तव
३१ वचन का मूल्य—शत्रुघनलाल शुक्ल
३२. वयरक्षामः—आचार्य चतुरसेन
३३. विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा
३४. विस्मृत यात्री—राहुल सांकृत्यायन
३५ वैशाली की नगर वधु—आचार्य चतुरसेन
३६. सह्याद्रि की चट्टानें—आचार्य चतुरसेन
३७ सिंह सेनापति—राहुल सांस्कृत्यायन
३८. सोना और खून (भाग १, २)—आचार्य चतुरसेन
३९ सुहाग के नूपुर—अमृतलाल नागर
४०. सोमनाथ—आचार्य चतुरसेन
४१. शतरज के मोहरे—अमृतलाल नागर
४२. शाह और शिल्पी—शान आरिलें

पत्र-पत्रिकाएँ

१. आलोचना अंक १३
२. कल्पना जून, १९५४
३ साहित्य संदेश (ऐतिहासिक उपन्यास विशेषांक)